कवि-श्री माला

* पञ्जाबी *

कवि

भाई वीरसिंह

सम्पादक-अनुवादक

प्रीतमसिंह पंछी



राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक
मोहनलाल भट्ट
मन्त्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
हिन्दीनगर, वर्धा
● ● ●

प्रथम संस्करण—१
मई, १९६२
मूल्य–रु २/–
● ● ●

मुद्रक
मोहनलाल भट्ट
राष्ट्रभाषा प्रेस
हिन्दीनगर वर्धा
● ● ●

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य-कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी भावानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य—इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२ के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

श्री प्रीतमसिंह पंछीने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, काव्यांशको सम्पादित तथा अनूदित कर सारी सामग्रीको इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। पुस्तकमें संकलित चित्र श्री मोहनसिंह, सम्पादक 'खालसा समाचार' अमृतसरके सौजन्यसे उपलब्ध हुआ है। संग्रहकी आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री टी॰ एम॰ अझारकरजी (डीन सर जे॰ जे॰ इन्स्टीट्यूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

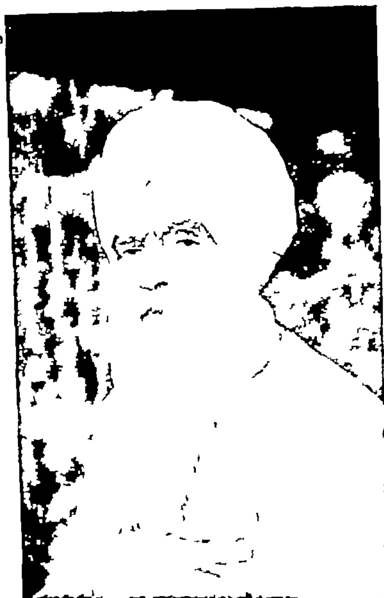
इसके अतिरिक्त चर्चाएं तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे भिन्न-भिन्नका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

अनुक्रमणिका

कवि-श्री माला

पञ्जाबी



भाई वीरसिंह

पञ्जाबी साहित्य परिचय

[प्रारम्भसे १९२० तक]

पञ्जाबी भाषा
और
उसका साहित्य

• • •

प्रारम्भिक काल (ई सन् ८००–१४५० तक)

इस बातसे सभी विद्वान् सहमत हैं कि पञ्जाबी साहित्य अपने अविकसित रूपमें गुरु नानकदेवसे पूर्व जन्म ले चुका था किन्तु जो कविता उस समय रची गई उसमें हिन्दी फारसी तथा भिन्न-भिन्न प्रदेशोंके शब्दोंकी इतनी भरमार थी कि उसकी भाषाको हम एक खिचड़ी भाषा कह सकते हैं।

ऐसे कवियोंमें गोरखनाथ (ई. सन् ९४०–१०११) चरपट (ई सन् ८९०–९९) अमीर खुसरो (ई सन् १२५३–१३२५) तुगलक शाह और खुसरो खाँ फरीद शकर गंज आदि प्रमुख कवि थे। इनके अलावा कबीर (ई. सन् १३९८–१५१८) रविदास (कबीरके समकालीन) और नामदेव (चौदहवीं सदी) की गणना भी इन्हीं कवियोंमें की जा सकती है। उस समय उत्तर-भारतमें एक ऐसी सन्त-भाषाका प्रादुर्भाव हो चुका था जिसने भिन्न-भिन्न प्रदेशोंके कवियोंको एक सूत्रमें बाँध दिया था। कबीर, नामदेव और रविदासका पञ्जाबसे कोई सम्बन्ध नहीं था किन्तु फिर भी उनकी रचनाओंमें उस समयकी प्रचलित पञ्जाबीका प्रभाव स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है। इन तीनों कवियोंकी—कबीर, नामदेव और रविदास—कविताएँ गुरु-ग्रन्थ साहबमें सम्मिलित हैं।

भाषाकी इस समानताका कारण यह था कि पञ्जाबके गोरखपन्थी साधु तथा बाबा फरीदके शिष्यगण दूर-दूरके प्रदेशोंमें फैले हुए थे। गोरखपन्थी साधु तो समस्त भारतमें फैले हुए थे।

बाबा फरीद शकर गंज (ई. सन् ११७३–१२६६) सूफी साहित्यके प्रवर्तक माने जाते हैं। सूफी फकीर भारतमें मुसलमानोंके आगमनके साथ ही आए थे। आरम्भमें इनका उद्देश्य इस्लामका प्रचार था। सूफी मत हिन्दुओंके भक्ति-मार्ग तथा वेदान्तका मुसलमानी रूप है। इस मतका जन्म इस्लामके साथ ही हो गया था।

फरीद शकर गंज सूफी फकीरोंमें अग्रणी थे। इनके श्लोक गुरु ग्रन्थ साहबमें सम्मिलित हैं। इनमें परमात्माका भय रोजा-नमाज नरकका भय संसारसे वैराग्य तथा जप-तप द्वारा साधनाकी प्रेरणा दी गई है। भाषा सीधी-सादी सरल तथा घरेलू उपमाओंसे ओत-प्रोत है। यद्यपि फरीद निराशावादी कवि हैं किन्तु उनकी कवितामें यत्र-तत्र आशावादी तत्व भी मौजूद हैं।

पूर्वार्द्ध मुगल-काल (ई. सन् १४५०–१७०० तक)

गुरु नानकदेवसे पूर्वके साहित्यकी चर्चा हम कर चुके हैं किन्तु पञ्जाबी साहित्यका उत्तरोत्तर विकास सिख गुरुओंके समय हुआ भाषा तथा भावको नया रूप मिला। इसी समय सर्वप्रथम गद्यकी भी रचना आरम्भ हुई। यह साहित्य तीन भक्तियोंमें विभक्त था—सूफी-साहित्य सिख-साहित्य तथा रोमाण्टिक-साहित्य। इस समय भक्ति-आन्दोलन चढ़ावपर था। इस आन्दोलनके प्रवर्तक तथा प्रचारक बनारसमें रामानन्द रविदास तथा कबीर आदि थे। बंगालमें चण्डीदास और चैतन्य महाप्रभु राजस्थानमें मीराबाई और दादू महाराष्ट्रमें नामदेव तथा तुकाराम और पञ्जाबमें सिख गुरु थे।

सिख गुरु जहाँ भक्ति-आन्दोलनके अभिन्न अंग थे वहाँ इसके कुछ दोषोंको भी मिटाना चाहते थे। शिव तथा योगकी उपासना करामातोंका लोभ और जादू मन्तरका मिथ्या ढकोसला डटकर विरोध किया। उन्होंने परमात्माकी भक्ति हठपूर्वक और मनको मारकर नहीं वरन् इसी दुनियामें रहते हुए शुभ कर्मों द्वारा करनेका पाठ पढ़ाया। वे समस्त प्रकृति पर्वत मनुष्य जंगल पशु अग्नि तारे तथा आकाशको परमात्माकी आरती उतारते हुए देखते थे। इनसे अपने आपको पृथक समझकर जो भक्तिका उपदेश देते थे उसका वे विरोध करते थे।

सिख धर्मके प्रवर्तक गुरु नानकदेव (ई. सन् १४६९–१५३९) का कार्य-क्षेत्र बड़ा विशाल था। उन्होंने लङ्कासे कश्मीर, आसामसे पेशावर, काबुल मक्का मदीना और बगदाद तक अपने धर्मका प्रचार किया। हिन्दू-मुसलमान दोनों उनके लिए समान थे। वे उस नई पञ्जाबी कविताके जन्मदाता थे जो 'सन्त-भाषा'

(पञ्जाबी-हिन्दी मिश्रित भाषा) में लिखी जाती थी। आपका ज्ञान विशाल था। धर्म दर्शन विज्ञान पुराण तथा प्राकृतिक वर्णनके उदाहरण आपकी कवितामें मिलते हैं। अनेक उपमाएँ, सरल और सादगी-भरा धर्मेच्छ भावना तथा संगीत आपकी कविताके विषय अंग हैं। जपुजी साहब आपकी असाधारण काव्य-प्रतिभाका श्रेष्ठतम नमूना है। गुरु नानककी कवितामें सरल भाषा द्वारा गहरे विचारोंके व्यक्त करनेकी खूबी विद्यमान है। कवितामें संयम तथा भाषाका अधिकार इन्हें एक महान् कविके रूपमें हमारे सामने ला खड़ा करता है। इनके प्रत्येक वाक्यमें एक अटल सचाई मिलती है और वे वाक्य एक मुहावरेकी भाँति कण्ठस्थ हो जाते हैं। भक्ति-आन्दो-लनके ये पहले ऐसे कवि हैं जिन्होंने आत्म-अनुभव विचारनेके साथ-साथ अपने वर्तमान जीवनको बनाने-सँवारनेकी प्रेरणा दी। बाबर बाणी में वे एक पीड़ाका अनुभव करते हुए बाबरके आक्रमण तथा अत्याचारके विरुद्ध अपनी आवाज ऊँची करते हैं —

> "जिन सिरि सोहनि पट्टीआं माँगी पाय संधूर।
> से सिर कती मुनियन, गल विच आवै धूड़ि।
> महिला अन्दर होंदियां हुणि बहणि न मिलनि हदूरि।
> जदहु सीआं वीआहियां लाड़े सोहनि पासि।
> हीड़ लि चढ़ि आईआ दन्द खंड कीते रासि।
> उपरहु पाणी वारिए, झले झिमकन पासि।"

गुरु नानक सिर्फ समाधि लगाते और सिर्फ माला ही नहीं जपते रहे वे अपने इर्द-गिर्द आँखें खोलकर देखते हैं तो उन्हें दिखाई देता है अत्याचार, जबरदस्ती कन्या-दान काव्य-धर्मका लोप और भूठका चारों ओर बोल-बाला। लेकिन गुरु नानकका देश-प्रेम सिर्फ किसी एक जाति या धर्म तक सीमित नहीं है। हिन्दू मुसलमान दोनोंपर हो रहे अत्याचारोंसे उनकी आत्मा कुम्मुला उठती है। वे हिन्दुओंकी गिरावटका मूल कारण उनकी धर्महीन मनःवृत्तिको समझते हैं। कुछ राजा कसाई हैं जो भारत-जैसे देशको मिट्टीमें मिला रहे हैं। लोगोंमें वह पुराना चाल-चलन और रहन-सहन भी नहीं रह गया। वे मुर्दोंकी भाँति मुककर चलते हैं पराघी भाषा बोलते हैं पराघी पोशाक पहनते हैं। फिर एसे नपुंसकोंकी दुर्दशा क्यों न हो। यह है उनकी अपने देशवासियोंकी गिरावटकी समीक्षा और देशमें वर्तमान राजनैतिक ढाँचेपर टीका तथा अत्याचारके विरुद्ध आह्वान।

इस देशकी मिट्टी इसके रङ्गीले मौसम तथा प्राकृतिक छटाने गुरु नानकको प्रकृतिका महान् चितेरा बना दिया है। इन्होंने मनुष्य मात्रके एक-साथ बैठने तथा एक-दूसरेके काम आनेका जो उपदेश दिया है वह इसी धर्मका सुधार करनेकी ओर एक संकेत है। इन्होंने हँसते-खेलते खाते-पीते कर्तव्य-निष्ठ बनकर परमात्माकी उपासनाका मार्ग बताया है।

गुरु नानककी अधिकतर कविता गीति-रूपमें है। इनकी कवितामें सब रस मौजूद हैं। उपयुक्त शब्दोंका चयन वातावरण तथा अलङ्कार कविताके ऐसे चकाचौंध मोती हैं जिन्हें इन्होंने बड़ी सुघड़ता और कौशलके साथ अपने गीतोंमें जड़ा है।

दूसरे गुरु अंगदेव (ई० सन् १५०४–१५५२) की बहुत थोड़ी रचनाएँ मिलती हैं। इन्होंने सिर्फ श्लोक लिखे हैं। इनकी कविताका एक ही विषय है कि सेवकको गुरुके साथ कैसे प्रीति निभानी चाहिए। आपकी कविता सरल है—आडम्बरसे कोसों दूर।

गुरु अमरदास (ई० सन् १४७९–१५७४) अपनी कवितामें मनुष्य-मात्रकी एकता तथा गुरु वाणीकी अटल सचाईका उपदेश देते हैं। छूत-छात जात-पाँत सती-प्रथा आदि बुराइयोंके विरुद्ध आपने जोरदार आवाज उठाई है। गुरु नानककी भाँति आपकी कविता भी विविधतासे परिपूर्ण है।

गुरु रामदास (ई० सन् १५३४–१५८१) की वाणीमें सिर्फ प्रेम-भावना है। गुरुके प्रति श्रद्धा और प्रभुका वर्णन आप बड़ी मिठासके साथ करते हैं। इनकी कविताके शब्द साधारणतः लम्बे होते हैं किन्तु उनमें एक लय होती है जो हृदयको मुग्ध कर देती है। गुरु रामदास भक्तिके कवि हैं। ये मनुष्य-मात्रको परमात्माके सङ्ग की लगनकी प्रेरणा देते हैं।

गुरु अर्जुनदेव (ई० सन् १५६३–१६०६) की वाणीका संग्रह सारे गुरुओंसे अधिक है। इनकी कविताकी भाषा विषय लय ताल आदिमें विविधता पाई जाती है। आपकी भाषामें पञ्जाबके सभी प्रदेशोंका प्रभाव स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है। इनकी भाषामें संस्कृतके अलावा फ़ारसी अरबी सिन्धी तथा राजस्थानी शब्दोंकी भरमार है। जहाँ गुरु नानकदेवने वर्णनमें संयमसे काम लिया है वहाँ आपकी कवितामें विस्तार बहुत है। ज्ञान और प्रभुके विषयपर ही आपने अपने काव्यकी आधार-शिला रखी है।

भाई गुरदास (ई० सन् १५५८–१६३७) चौथे गुरु रामदासके भतीजे थे। संस्कृत फ़ारसी हिन्दीके आप प्रकाण्ड पण्डित थे। गुरु अर्जुनदेवने जब गुरु-ग्रन्थ साहबका संग्रह किया तो उसके लिखनेका भार आप पर सौंपा। आपने पञ्जाबीमें उनतालीस वार * रचकर पञ्जाबी भाषा तथा काव्यके विकासमें अपूर्व योगदान दिया है। अपने गुरु और शिष्योंकी प्रीति सिख धर्मकी महिमा सेवा तथा विनम्रताके ऊपर लिखा है। आपकी कवितामें भिन्न-भिन्न धर्मोंका पुराण सम्बन्धी और प्रकृतिका ज्ञान यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। कवितामें बौद्धिकताके चमत्कार अधिक हैं भाव-प्रधानता कम है। इनके वर्णनमें संयम है।

---

* एक छन्द जिसमें वीर-गाथाएँ लिखी जाती हैं।

गुरु गोबिन्दसिंहने (ई सन् १६६६–१७०८) पञ्जाबीमें बहुत कम रचना की है। सिर्फ चण्डी दी वार तथा कुछ श्लोक उनके पञ्जाबी भाषामें लिखे मिलते हैं। बाकी सारा साहित्य ब्रजभाषा तथा प्राचीन हिन्दीमें है जिसमें फारसीका रङ्ग भी मिला हुआ है।

चण्डी दी वार एक वीररस प्रधान काव्य है। इसमें दुर्गादेवी और दैत्योंके युद्धकी कथा है। यह एक प्रभावशाली रचना है जिसे पढ़कर खूनमें एक उबाल आ जाता है और ऐसा अनुभव होने लगता है मानो पढ़नेवाला स्वयं युद्ध क्षेत्रमें खड़ा सब देख रहा हो।

गद्यका जन्म

पञ्जाबीमें कविताके विकासके साथ-साथ गद्यका भी जन्म हुआ। प्रारम्भिक कालमें महापुरुषोंकी जन्म-कथाएँ, गोष्ठियाँ तथा धार्मिक पुस्तकोंकी टीकाएँ लिखी गईं। गुरु नानककी पहली जन्म-साखी (कथा) भाई बाले ने जो गुरु नानकका निजी सेवक था दूसरे सिख गुरु अंगददेवसे लिखवाई। इस साखीके कई छपे ग्रन्थ संस्करण मिलते हैं। पर इसकी भाषा आजकी भाषाके इतनी निकट है कि इसके प्राचीन होनेमें सन्देह उत्पन्न होता है। सम्भव है कि लगभग तीन सौ वर्ष प्राचीन भाई बालेकी जन्म-साखीमें किसी मठाल सिख ने मिलावट कर दी हो। इसके लिख जानेकी तिथि सम्वत् १५९७ वैसाख सुदी पञ्चमी है।

जन्म-साखीका एक संस्करण विलायत वाली जन्म-साखी कहलाता है। यह कालब्रुक साहब ने ईस्ट इण्डिया कम्पनीको भेंट की थी। इसके कुछ शब्दोंको छोड़कर बाकी सारी कथायें भी भाई बालेकी जन्म-साखीके साथ मेल खाती हैं। इस विलायती संस्करणके इन शब्दोंसे "बोलो भाईजी गुरुजीकी फतह होई" यह सिद्ध होता है कि यह संस्करण गुरु गोबिन्दसिंहके समयकी किसी प्राचीन पाण्डुलिपिसे नकल करके तैयार किया गया होगा क्योंकि "वाह गुरुजीकी फतह" गुरु गोबिन्दसिंहके समय ही प्रचलित था। इस जन्म-साखी में संयमपूर्ण नियम और सरलता-भरा वर्णन एक अनूठा रस पैदा करता है।

जन्म-साखियों (कथाओं) के साथ-साथ गुरु नानककी भिन्न-भिन्न स्थानों पर हुई गोष्ठियाँ भी सेवकों द्वारा लिखी गई मिलती हैं। इन गोष्ठियोंकी भाषा खिचड़ी भाषा है। इनके लेखकोंको व्याकरणका ज्ञान नहीं है। पर हाजरनामा पारसिंह और बाबालालकी मानी हुई भाषा रहस्यमय विचार और नपतुला वर्णनके अद्वितीय उदाहरण हैं।

सूफी तथा भक्ति-भावकी कविता

सूफी मार्ग सूफी मतके सम्बन्धमें हम बता आए हैं कि इस मतका जन्म भारतमें मुसलमानोंके आगमनके साथ-साथ हुआ। प्रारम्भमें यह मत सिर्फ इस्लामके प्रचार तक सीमित था। पञ्जाबी भाषामें इस मतके पहले कवि शेख फरीद थे। आगे चलकर जब इस्लाम और हिन्दू धर्मका परस्पर मेल बढ़ा तो यहांके रीति-रिवाज तथा धर्मोंका सूफी फकीरों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। बौद्ध धर्म वेदान्त और सिख दर्शन सूफी मतपर गहरा प्रभाव डाला। इस मतके विकासकी यह दूसरी सीढ़ी थी। न केवल सूफी कवियोंके विचारोंमें एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया वरन् उनके समूचे काव्यमें एक स्वदेशी रंग आ गया। सूफी कवियोंका काव्य निजी अनुभवों पीड़ाओंसे उत्प्रेरित था।

शाह हुसैन (ई.सन् १५१८–१५९९) लाहौरके रहनेवाले थे। ये प्रसिद्ध करामाती फकीर थे। एक किम्वदन्ती है कि इनकी मित्रता एक हिन्दू लड़के माधोलालके साथ हो गई थी। इश्क भी हद तक पहुँच गई थी। इसलिए इनका नाम माधोलाल हुसैन प्रसिद्ध हुआ। ये अकबर और गुरु अर्जुनदेवसे भी मिले थे। संगीत और नृत्यका इन्हें बेहद शौक था। लाहौरके शालीमार बागके पास इनकी मजार है।

शाह हुसैन सूफी विचार-धाराके प्रथम कवि थे। इनकी "काफियां"* प्रसिद्ध हैं। इनकी कविताके विषय हैं–विछोह प्रीति तथा वैराग्य। जो संगीत और माधुर्य इनकी कवितामें है वह पञ्जाबके अन्य किसी सूफी कविकी कवितामें नहीं मिलता।

फरीद जहाँ अपने धर्मके कट्टर अनुयायी थे वहाँ शाह हुसैन अद्वैतवादी सूफी थे। इसीलिए इनकी कविता संकीर्णताकी परिधिके बाहर है। किसी भी धार्मिक बन्धनकी कैदमें ये नहीं हैं।

सुल्तान बाहू (ई सन् १६२९–१६९०) मनुष्य और परमात्माकी एकरूपता के व्यक्त करनेमें कमाल किया है। इनकी कवितामें शाह हुसैन जैसी पीड़ा नहीं है वरन् सादा और जोरदार वर्णन है। भाषा केन्द्रीय पञ्जाबी है पर फारसीके प्रभावने उसे और भी शक्तिशाली बना दिया है। सुल्तान बाहूने स्वर्ग-नरक विद्या-बुद्धि तथा हरेक प्रकारके धार्मिक बन्धनोंके प्रति उदासीनता प्रकट की है। अपने भीतर देखनेकी प्रेरणा दी है।

शाह शरफ (ई सन् १७२४) ने अपने आपको मारकर, इच्छाएं कुचलकर प्रेम-प्याला पीनेका उपदेश दिया है। इनकी वर्णन-शैली सीधी-सादी और भाषा ठेठ है।

---

* एक छन्द।

भक्ति-मार्ग मुसलमान सूफी कवियोंके अलावा इस समय अनेक हिन्दू कवियोंने भी निर्गुण-सगुण और राम-नामरूपी भक्ति-रसको पञ्जाबी कवितामें व्यक्त किया। इन कवियोंने राम-कृष्ण-लीला, वेदान्त, जीवनकी अस्थिरता और भक्ति द्वारा जीवनको सार्थक बनानेकी भावनाको गहराईके साथ व्यक्त किया है। इनकी नीतिमय कविता मीठी शब्दावली व केन्द्रीय भाषा लिए हुए है। इस कवितापर गुरु नानक, मीराबाई और शाह हुसैनके प्रभावकी छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

भक्ति मार्गके प्रसिद्ध भक्त-कवि काहना गुरु अर्जुनदेवके समकालीन थे। इन्होंने सिख और सूफी कवियोंकी भावनाओं, संकेत तथा शब्दावलीको अद्वैत वेदान्तके प्रचारके लिए अपनी कवितामें ढाला।

इनके अलावा शाहजहाँके समकालीन अलीराम और बाबा सुन्दर भी इस धाराके अच्छे कवि थे। बाबा सुन्दरकी 'सद रामकली' गुरु-ग्रन्थ साहबमें संगृहीत है। इस धाराके कवियोंकी कुछ व्यंग्यात्मक रचनाएँ भी मिलती हैं। यह कविता मस्ती और फक्कड़पनकी कविता है जिसे लोगोंने साधु-भाषा समझकर कण्ठस्थ कर लिया था।

कवि सुथरा शाह सिखोंके सातवें गुरु हरिगोविन्दके समकालीन तथा सेवक थे। सुथरा शाहका सम्प्रदाय भी अब तक चला आ रहा है। इनकी कविताका उद्देश्य नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा देना था।

वलहन दूसरे व्यंग्यात्मक कवि थे। ये सुथरा शाहके समकालीन थे। इनकी कविताका विषय संसारकी नश्वरता, वैराग्य, जप-तप आदि है। इनके व्यंग्यसे भरे वर्णन पढ़कर मन प्रसन्न हो उठता है।

रोमान्टिक कविता

इस समय पञ्जाबमें मनुष्यके सांसारिक प्रेमको लेकर कविताकी रचना आरम्भ हुई। इसकी प्रेरणा पञ्जाबकी वे प्रणय-गाथाएँ थीं जो पञ्जाबकी प्रेम-भीनी आत्मापर छाई हुई थीं। सर्वप्रथम इस कविताका रङ्ग घरेलू तथा यथार्थवादी था पर धीरे-धीरे इसपर फारसी उपमाओं और शब्दोंका रङ्ग चढ़ता गया। रोमान्टिक साहित्य धार्मिक साहित्यके बाद सबसे अधिक रचा गया। पञ्जाबके प्राकृतिक तथा रङ्गीन वातावरणने इसे प्रेरणा दी। प्रकृति और मानव प्रेमकी गाथाओंके समन्वयसे यह साहित्य और अधिक चमक उठा।

'हीर रांझा', 'सस्सी पुन्नूं' और 'मिरजा साहबां' की महान प्रेम गाथाओंको लेकर ही इस समयके रोमान्टिक साहित्यकी रचना हुई।

'हीर रांझा' की प्रणय-गाथाको कविताके सूत्रमें बाँधने वाला सबसे पहला कवि दामोदर था। 'हीर रांझा' की कहानी संक्षेपमें इस प्रकार है —

रांझा तख्त हजारेके खाते-पीते परिवारमें सबसे छोटा लड़का था। वह बड़े लाड़-प्यारसे पला था। जब पिताकी मृत्यु हो गई तो भाइयों और भाभियोंने उसके साथ दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया। वह रूठकर घरसे निकल गया। झंगसियालके एक सरदार चूचककी बेटी हीरसे उसकी चिनाब दरियाको पार करते समय घाट बीच झगड़ेमें मुलाकात हुई। हीरका अनुपम सौन्दर्य देखते ही रांझा उसपर आसक्त हो गया। रांझा भी कोई कम सुन्दर नहीं था। हीर भी उसे देखते ही निहाल हो गई। हीरके पिता चूचकको अपने ढोर चरानेके लिए एक चरवाहेकी जरूरत थी। पितासे कहकर हीरने रांझाको अपने घर पर नौकर रखवा दिया।

धीरे-धीरे दोनोंका प्रेम बढ़ा। हीर जंगलमें जाकर रांझासे मिलती। हीरके चाचा कैदोने दोनोंका पीछा किया। उनके प्यारका रहस्य सारे गाँवके आगे प्रकट कर दिया। परिणाम स्वरूप हीरको रंगपुरके सैद सरदार विवाह कर ले गए। रांझा जोगीका वेष बनाकर रंगपुर गया। हीरकी ननद सहितीकी सहायतासे दोनों प्रेमी भाग गए। पीछा करनेपर पकड़े गए और काजीके सामने पेश किए गए। काजीने रांझा जोगीके कुछ चमत्कारोंसे भयभीत होकर हीर उसे ही सौंप दी।

दामोदर अकबरका समकालीन और झंगके इलाकेका रहने वाला था। इसकी भाषामें स्थानीय रंग खूब उभरा है। वह गाँवका साधारण दुकानदार या पटवारी था। उसके इस काव्यमें हीर रांझा चूचक कैदो काजी सहती आदिका चरित्र-चित्रण बड़ा सुन्दर हुआ है। समूचे काव्यमें नाटकीय रंग है। सिख विचारधाराका प्रभाव भी दामोदरने ग्रहण किया है और उसके काव्यमें उस समयकी संस्कृतिका सजीव-चित्र मिलता है। हिन्दू-मुसलमानोंके सामाजिक रीति-रिवाजोंमें बड़ी समानता दिखाई पड़ती है। हीरके विवाहके समय एक ब्राह्मण भी रस्म अदा करता है और काजी निकाह भी पढ़वाता है। सगाई करनेके लिए ब्राह्मण तथा मुसलमान दोनों मिलकर जाते हैं।

दामोदरके समकालीन कवि पीलूने मिर्जा साहिबां की प्रणय-गाथाको कविताका रूप दिया है। वर्णन साधारण है किन्तु कथाकी मार्मिकता करुणिक मन-भाते स्वर, भावनाओंकी बाढ़ पीलूके इस काव्यको ऊँचा उठानेमें सहायता देती है। पीलूके काव्यका पंजाबी कवितामें एक विशेष स्थान है।

मिर्जा-साहिबां की कथा इस प्रकार है—"मिर्जा खरल मरीद खिमाणे दानाबादका रहनेवाला था। साहिबां झंगसियालके खीवे खानकी (मिर्जाके मामाकी) बेटी थी। मिर्जाके बापकी मृत्यु हो जानेपर माँ उसे अपने मायके ले गई। मस्जिदमें पढ़नेके लिए यह जाने लगा। साहिबां भी वहीं पढ़ती थी। दोनोंमें प्रेमका अंकुर फूटा। पता चलनेपर मिर्जाको मामाके घरसे निकलना पड़ा और उधर साहिबांके विवाहकी तैयारी शुरू की गई। साहिबांने विवाहसे कुछ दिन पूर्व करमू ब्राह्मणके हाथ मिर्जाको संदेसा भेजा कि मुझे भगाकर ले जा। मिर्जा विवाह वाले

दिन अपनी घोड़ीपर सवार होकर आया और साहबांको भगा ले गया। पर आगे भावीको कुछ और ही मंजूर था। साहबांके भाइयोंने पीछा किया। मिर्जा एक पेड़के नीचे आराम कर रहा था। शत्रुको सिरपर आया देखकर साहबां घबरा गई। उसन सोचा कि मिर्जा आँख खुलतेही उसके भाइयोंके साथ भिड़ जायगा और उन्हें मार डालेगा। साहबांने अपने भाइयोंकी जान बचानेके लिए मिर्जाके तीरोंका तरकश पेड़ पर टांग दिया। इस तरह मिर्जा निहत्था मारा गया। किम्वदन्ती है कि अपन प्रेमीकी मृत्युके पश्चात् साहबांने भी आत्म-हत्या कर ली।

पीलून मिर्जा साहबां में प्रम कुछ अनोखे ढंगसे पेश किया है। इसकी कथा अस्वाभाविक लगती है। एक प्रेमिका अपन प्रेमीको स्वयं ही मौतके मुंहमें धकेल देती है। प्रेमीसे भाई उसे प्रिय है और फिर मिर्जाकी मृत्युके पश्चात् एक दार्शनिककी भांति कहती है —"मिर्जे बड़-बड़ पीर-पैगम्बर मर गए, तू किसका जामा है।" कथाकी अस्वाभाविकतासे स्पष्ट है कि कविको मानव-चरित्रका अल्प ज्ञान है। वह मनुष्यको भावीके खिलौनेके रूपमें पेश करता है।

दामोदर और पीलूके अलावा इस दौरके दो और रोमान्टिक कवि हुए हैं—हाफिज बरखुरदार और अहमद। दोनों कवियोंने पञ्जाबकी वह प्रचलित प्रेम-गाथाको छन्दोंमें बाँधा है। बरखुरदारने सस्सी पुन्नूं मिर्जा साहबां और यूसफ जुलैखां के किस्से लिखे और अहमदने 'हीर रांझा' की कहानीको बैत छन्दमें वर्णनात्मक शैलीमें लिखकर एक नया प्रयोग किया है। अहमदके लगभग सवा सौ साल बाद वारिस शाहन इसी 'बैत' छन्दमें अपने महान काव्य "हीर" की रचना करके अमर कीर्ति अर्जित की।

उत्तरार्द्ध मुगल-काल—पद्य (ई सन् १७००–१८०० तक)

औरङ्गजेबकी मृत्युके पश्चात् मुगल साम्राज्य काफी कमजोर पड़ गया। मराठों और सिखोंने अपनी शक्ति बढ़ा ली। अहमदशाह अब्दालीके आक्रमणोंने अनुभवीन सारे देशमें तहलका मचा दिया था। जो शान्तिपूर्ण वातावरण पहले पाँच सिख गुरुओंके साहित्य-निर्माणके लिए मिला था वह खत्म हो चुका था। इसलिए सिख साहित्यका विकास रुक गया। राजनैतिक संघर्षने सिख सम्प्रदायका ध्यान साहित्य-निर्माणकी ओर नहीं जाने दिया। पर सूफी कवि साहित्यके निर्माणमें जुटे ही रहे। इस समयका अधिकतर साहित्य रोमान्टिक साहित्य है।

इस कालके प्रसिद्ध सूफी कवि बुल्लेशाह (ई सन् १६८०–१७५७) अलीहैदर (ई सन् १६९०–१७८५) और वजीद हुए हैं। बुल्लेशाह शाह हुसैनकी भांति भक्तिवादी सूफी थे। इन्होंने परमात्मा और तथा आत्माकी एकताके गीत गाए हैं। बुल्लेशाहकी धारणा थी कि परमात्माकी प्राप्तिका एकमात्र मार्ग प्रम है। मनुष्य परमात्मासे भयभीत न हो। उसे अपना प्रियतम समझकर कुर्बान हो जाए।

तप करे, आत्मकी प्राप्ति करे और मर्त्य में मूलता रहे। हृदयको एसा स्वच्छ बना ले कि उसमें बड़ा बृष्टिमात्र हाल रूप अथवा स्वयं ही ब्रह्म-रूप हो जाए।

कभी ईश्वर और धर्मधर्ममें सूफी मतके आधारभूत सिद्धान्तोंकी समानताके अतिरिक्त भिन्नता यह है कि कभी ईश्वर मर्मज्ञ कवि हैं और धर्म व इनके व्यंग्यात्मक वस्तुसे अपनी बात कहते हैं। इन सूफी कवियोंके पश्चात् रोमान्टिक कविताका दूसरा दौर प्रारम्भ हुआ। मुकबलन हीर-राँझा का किस्सा बैत छन्दमें लिखा। यह अच्छा था। मुकबलके दर्शनम आदर्श आकर्षण तथा नाटकीयता है। उसने कहानी पर जोर दिया है चरित्र-चित्रण पर नहीं। कठिन पञ्जाबी मुहावरों तथा लोकोक्तियोंको बड़ी कारीगरीसे कविताम प्रयोग किया है। हीर-राँझा का किस्सा लिखनसे पूर्व मुकबलन हुआरत मुहम्मदके नातियों हसन हुसैनके कर्बलाके मैदानमें हुए बलिदान सम्बन्धी एक "जंग नामा" भी लिखा था।

इस रोमान्टिक दौरके दूसरे कवि वारसशाह (ई. सन् १७३०—१७९) ने पञ्जाबी कविताको एक नई दिशा प्रदान की। वारसका जन्म शेखूपुराके जण्डियाला शेरखाँ (पश्चिमी पञ्जाब) में हुआ था। इन्होंने काफी बहुत शिक्षा मस्जिदमें हासिल की। कुछ अर्सेतक कसूर-शहरमें रहे। कसूरमें मातापिताके साथ रहकर 'कसूर' आ गए और उस्ताद गुलाम मुर्तजा मखदूमके मुरीद बन गए। यहाँ आपने कुरान शरीफकी तालीम हासिल की।

किम्वदन्ती है कि बुल्लेशाह व वारसशाह सहपाठी थे। कसूरसे वारसशाह 'पाकपटन' चले गए। कुछ दिन यहाँ रहकर वे उदू साहिब आकर रहने लगे। अब तक वारसशाह काफी अनुभवी हो चुके थे। यहाँ उन्हें एक नया अनुभव हुआ। वारसशाह एक हिन्दू स्त्री भागभरीसे प्रेम करने लगे थे किन्तु उन्हें निराशाका ही मुँह देखना पड़ा। भागभरीके भाइयोंने वारसशाहको बुरी तरह पीटकर वहाँसे भगा दिया। वे फिर मलकाहाँसी जिलेके मलका हांस स्थानपर आकर रहने लगे। यहाँ वारसशाहने अपने असफल प्रेमकी याद निराशामें डूबकर हीर महाकाव्यकी रचना की।

इनके पूर्व हीर-राँझा की प्रणय-गाथाको पञ्जाबीमें तीन बार लिखा जा चुका था। वारसशाहने कथा-वस्तु तो वही पुरानी ली, परन्तु इन्होंने उसमें प्राण फूँककर उसे नया रङ्ग दे दिया। नाटकीयता कथाका विस्तार और चरित्र चित्रणकी खूबियोंने इस महाकाव्यको पूर्व-रचित काव्योंसे श्रेष्ठ बना दिया। यह एक ऐसा दुःखान्त महाकाव्य था जिसमें वारसशाहने अपनी सारी पीड़ा उँडेल दी। मनुष्यके मनके भावोंका चित्रण करनेमें वे बेजोड़ थे। प्रत्येक कविने रोम रोमसे रचना की थी।

वारसशाहका पूर्व कवियोंका कथा-वर्णन कुछ अस्वाभाविक बहुत है। उन्होंने राझाको तो सौन्दर्यकी प्रतिमाके रूपमें उपस्थित किया है परन्तु हीरका

अमहाल् बहादुर तथा पौरुषकी साक्षात् मूर्तिके रूपमें चित्रित किया है। वारिसशाहके कथा-सूत्रमें ऐसी कोई अस्वाभाविकता नहीं है।

वारिसशाहने अपने इस महाकाव्यमें पञ्जाबकी संस्कृतिका जीता-जागता चित्र खींचा है। रीति-रिवाज प्रकृतिकी छटा और खुले स्वभाववाले पञ्जाबियोंका चित्रण करनेमें इन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है। वारिसशाहको सर्वप्रियता देनेवाली चीज है उनकी हृदय मर्मज्ञता। य स्वयं ही अपने पात्रोंके रूपमें उपस्थित हैं। इसका रहस्य यह है कि इन्हें जीवनका गहरा अनुभव था। इन्होंने बहुत दुनिया देखी थी। हरेक घाटका पानी पी रखा था। मनुष्यके मर्म और समाजकी इनमें अपार क्षमता थी। भावोंके य उस्ताद थ।

वारिसशाहकी कविताकी दूसरी विशेषता भाषाका प्रवाह है। वे बातको ऐसे कह जाते हैं कि जैसे य कविता बना नहीं रहे हों वरन् स्वयं उनके अंतरसे काव्य-स्रोत फूट पड़ा है। इनकी इस खूबीके पीछे भाषापर पूर्ण अधिकार और विचारोंकी सुलझी हुई तस्वीर है। इनकी कविताका स्रोत पहाड़के झरनेकी भाँति बहता चला जाता है।

तीसरी खूबी वारिसशाह द्वारा पञ्जाबकी संस्कृतिका चित्रण करना है। गाँवोंके जीते-जागते चित्र आँखोंके सम्मुख नाच उठते हैं। गड़रियों भाई-भौजाइयोंके रिश्ते जीरके, तमाम गाँवोंका रङ्ग मस्जिदोंके दृश्य योगियोंकी अलिमी सूफियोंके चिन्तन (सब हस्तियोंका तिरस्कार करती भावना) धार्मिकोंके लड़ाई-झगड़े ईर्ष्या द्वेष आदिका सर्वाङ्ग चित्रण वारिसशाहके काव्यमें मिलता है।

चौथी खूबी अलङ्कारोंका प्रयोग है। अलङ्कारोंसे वारिसशाहकी कविता बोझिल नहीं है। वे अलङ्कारोंका स्वाभाविक ढङ्गसे प्रयोग करते हैं।

वारिसशाहके काव्यका एक पहलू और भी है कि उन्होंने उस समयके समाजकी बुराइयोंका वर्णन ही नहीं किया बल्कि उसमें सुधार करनेके कई सुझाव भी दिए हैं। समाजका आवश्यक अङ्ग स्त्री है। वारिसशाहने हीरको सूझ-बूझ चतुराई और वीरताकी देवी बना दिया है। उन्होंने सामाजिक व्यक्तियोंको एक नुस्खा बताया है कि जिसका मद किसीके आगे नहीं तोड़ना चाहिए।

वारिसशाहके महाकाव्य 'हीर' की कहानी वास्तवमें सारे पञ्जाबके रीति रिवाज और सामर्थ्य व्यक्तियोंके विरुद्ध योद्धा मिलनेके हर प्रेमियोंकी महान् गाथा है।

वारिसशाह पञ्जाबके अमर कवि हैं। आज भी पश्चिमी और पूर्वी पञ्जाबके गाँव-गाँवमें वारिसशाह-रचित 'हीर' लाखोंकी जबानपर है।

हीर' की कथाको कवितामें बाँधनेवाले इनसे पहले एक और कवि दामोदर भी हुए हैं। इनकी रचनामें मौलिकता कम है और लगता है कि हीर-राँझा की सुनी-सुनाई कहानी सिर्फ पूर्व कविसे कह दी गई है।

सूफी तथा रोमान्टिक कविताके इस भण्डारके साथ-साथ उस जमानेकी पञ्जाब-मुसलमान वीररसकी कविताको फिरसे जन्म दिया, पर इस दौरकी अधिक कविता

नहीं मिलती। नजाबत द्वारा रचित 'नादरशाह दी वार' बहुत प्रसिद्ध है। नजाबत मटीला हरनी जिला शाहपुर (पश्चिमी पंजाब) के निवासी थे। सब कलकी 'नादर शाह दी वार'को (जरनल ऑफ दी पंजाब हिस्टॉरिकल सोसाइटी भाग १) में रायन मसरोंसे राय बहादुर हरिकृष्ण कौलने मासोंसे सुनकर छपवाई थी।

यह वार नादर शाहके आक्रमणके कोई आधी सदी पश्चात् लिखी गई थी। इसमें भारतीयोंके देश-प्रेमको उभारा गया है और नादरशाह तथा ईरानी सभ्यताकी निन्दा की गई है। यह वार ऐतिहासिक दृष्टिसे काफी महत्त्व रखती है। इसमें नादर शाहके आक्रमणको बड़े ब्यौरोंके साथ चित्रित किया गया है।

उत्तरार्द्ध मुगल-काल—गद्य

इस समय पंजाबी गद्यका भी विकास हुआ उसका विषय वही पुराना रहा। साखियाँ (कथाएँ) धर्मोपदेशकों से अति-सरल गद्य शैलीमें लिखी जाती रहीं। गद्यके विकासमें सबसे अधिक काम भाई मनीसिंहने किया। वे स्वर्ण मन्दिर अमृतसरके ग्रन्थी (पुरोहित) थे और गुरु गोविन्दसिंहके हजूरी सिख रह चुके थे। सिख धर्म और पंजाबी भाषाके अतिरिक्त इन्हें अन्य धर्मों तथा विशेषकर संस्कृत फारसी और ब्रजभाषा पर अपूर्व अधिकार था। इसीलिए इनकी गद्य-शैलीमें विद्वानोंकी-सी प्रौढ़ता है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिक्खां दी भगत माल' है जो उस समयके गद्य-साहित्यका उत्कृष्ट नमूना है। इसमें प्रसिद्ध सिक्खोंकी जीवनियाँ संगृहीत हैं। हरेक जीवनीके साथ गुरु-ग्रन्थ साहबके किसी श्लोककी व्याख्या भी की गई है। पंजाबी भाषा और साहित्यके आलोचकोंका मत है कि भाई मनीसिंह पंजाबी गद्यके जन्मदाता हैं। भाई मनीसिंहकी भाँति पंजाबी गद्यको समृद्धिशाली बनानेवालोंमें एक अड्डन शाह हुए हैं। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पारसभाग' है जिसमें साधु-महात्माओंकी साखियाँ सीधी सरल भाषामें लिखी हुई मिलती हैं।

इस समयके गुमनाम गद्य-लेखकों द्वारा लिखी गई हजरत मुहम्मद साहब और रविदासकी जीवनियाँ भी मिलती हैं। पर इनकी भाषा इतनी खिचड़ी है कि केन्द्रीय पंजाबके लोगोंसे बहुत दूर चली गई है।

सिख राज्य-काल (सन् १८००—१८५० तक)

महाराजा रणजीत सिंहका राज्य सारे पंजाबियोंका एक साझा राज्य था। आठ-दस सौ वर्ष तक भारत विदेशी आक्रमणोंके नीचे पड़ा कराहता रहा। अब उसने एक सन्तोषकी साँस ली थी। प्रदेशमें शान्ति स्थापित हो गई। लाहौर एक बार फिर राजधानी बना। और लाहौरकी भाषा सब जगह प्रचलित होने लगी। यही भाषा उस समय के साहित्य की भाषा कहलाई। महाराजा रणजीत सिंह स्वयं ही कम पढ़े-लिखे थे किन्तु उनमें राजनैतिक चतुराई तथा सूझ

वृत्तके साथ कलाकारोंके परस्पर-मिलनकी अद्भुत क्षमता थी। लेखकों-कवियोंका वे बहुत सम्मान करते थे। उन्हें जागीरें और पुरस्कार देते थे। यद्यपि महाराजा रणजीतसिंहके दरबारकी भाषा फारसी थी फिर भी उनके पंजाबी भाषाके प्रति प्रेम प्रदेशके हरेक भागमें कवि और लेखक पैदा किए। पंजाबीको एक ठोस रूप मिलना शुरू हुआ। इस समय अधिकतर रोमांटिक कविता रची गई।

महाराज रणजीतसिंहके दरबारमें विदेशी कला भी थी। महाराजा अपने जमानेकी फिजा भी नई चीजको ग्रहण करना जानते थे। अपनी सेनाको आधुनिक साधनोंसे सज्जित करनेके लिए उन्होंने फ्रांसीसी अफसर नौकर रखे थे।

सिख राज्य-कालके सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा प्रतिनिधि कवि हाशम थे। हाशम ११६१ हिजरीमें पैदा हुए थे और १२१० में उनकी मृत्यु हुई। एक किम्वदन्ती है कि महाराज रणजीतसिंहके पिता सरदार महासिंहकी स्तुतिमें लिखी एक कविता सुनानेपर रणजीतसिंह उनपर बहुत खुश हुए। धीरे-धीरे राज दरबारमें रुतबा बढ़ता गया और हाशम महाराज रणजीतसिंहके निकट राज-कवियोंमें हो गए। उन्हें जागीर दी गई। हाशमकी सन्तानें १९४७ तक सिख राजकी ओरसे मिली जागीरपर ही गुजर करती रही हैं।

हाशम जगदेव कलां (जिला अमृतसर) के निवासी थे। हाशमने शीरीं-फरहाद लैला मजनूं सोहनी-महींवाल सस्सी-पुन्नूं दोहड़े तथा बारह माह आदि ग्रन्थोंकी रचना की। इनकी अन्तिम तीन रचनाओंमें भावुकता सरल वर्णन विस्तारसे संकोच भावोंकी सादगी आदि गुण पाए जाते हैं।

सस्सी-पुन्नूं की कहानी इस प्रकार है --

सस्सी आदम बादशाहके महलोंमें पैदा होती है। उसके जन्मके समय ही ज्योतिषी बता देते हैं कि यह लड़की जवानीमें प्रेमके पीछे मर जाएगी। आदम अपनी बदनामी और मानका ख्याल करते हुए सस्सीको सन्दूकमें बन्द करके नदीमें प्रवाहित कर देते हैं। वह सन्दूक अत्ता धोबीके हाथ पड़ जाता है, वह सस्सीका पालन करता है। उसके जवान हो जानेपर अत्ता उसके विवाहकी बात पक्की करना चाहता है पर सस्सी मानती नहीं। धोबी आदम बादशाहके पास जाकर शिकायत करता है। सस्सीको आदमके दरबारमें पेश किया जाता है। बचपनका तावीज दिखाकर सस्सी बादशाहको संकेत करती है कि वह उसकी ही बेटी है। उन दिनों किसी मूर्तिकारने एक सौदागरके बागमें बलोच शहजादे पुन्नूंका बुत बनाकर खड़ा किया था। उसे देखते ही सस्सी मुग्ध हो जाती है। एक बार बलोचोंका कोई काफिला उधर आता है। सस्सी उन्हें कैद करवा देती है। एक ही शर्तपर छोड़नेके लिए तैयार होती है कि वे उसे पुन्नूंसे मिला दें। अन्तमें पुन्नूं आता है। पुन्नूं जब सस्सीके सौन्दर्यको देखता है तो उसपर वह भी मुग्ध हो जाता है। दोनों प्रेमी एक साथ रहने लगते हैं। पर जब बलोचोंको

डायरी महाराजा रणजीतसिंह भी इसी समय लिखी गई जिसकी भाषा आजकी पञ्जाबी भाषाके बहुत निकट है। अंग्रेजोंके पञ्जाबमें पैर जमनेके पश्चात् ई. सन् १८५४ में लुधियाना-मिशनने पञ्जाबी कोश भी तैयार किया। इसी समय अकबर-नामा और अदले-अकबरी के भी पञ्जाबी अनुवाद प्रकाशित हुए।

अंग्रेजी राज्य-काल (सन् १८६०–१९२० तक)

पञ्जाब भारतका सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य था। सारे भारतपर अपना पैर जमा लेनेके बाद अंग्रेजोंने इसपर अधिकार किया। विदेशी पराधीनताने पञ्जाबको गहरी नींदमें सुला दिया। चारों तरफ निराशाके कारण जीवनमें बार उदासीनता छा गई।

ई सन १८७२ में नामधारी आन्दोलन चला। इसका उद्देश्य सिखोंकी खोई हुई मान-मर्यादा लौटाने तथा देशकी स्वतन्त्रताके लिए एक तड़प पैदा करना था। नामधारियोंने विदेशी सरकार, विदेशी शिक्षा विदेशी वस्त्र तथा प्रत्येक विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारका प्रचार किया। नामधारी सिखोंके नेता गुरु राम-सिंहको अंग्रेजों द्वारा बर्मामें निर्वासित किए जानेसे और उनकी दमन नीतिके कारण यह आन्दोलन कुछ दब-सा गया पर भीतर ही भीतर चिनगारी सुलगती रही। उस समयके साहित्यपर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

अंग्रेज सरकार पञ्जाबमें आते समय अपने साथ यू पी से एसे क्लर्कोंकी एक सेना भी लेती आई थी जिनकी मातृभाषा उर्दू थी। इन उर्दू जाननेवाले क्लर्कोंकी सहायतासे उर्दूको अदालतकी भाषा बना दिया गया। आगे चलकर पञ्जाबमें शिक्षाका माध्यम उर्दूको बना दिया गया ताकि क्लर्कोंकी माँग यहींसे पूरी होती रहे। बंगाली बाबू भी सरकारी दफ्तरोंके लिए मँगाए गए। बंगाली भाई अंग्रेजी भाषाके जानकार थे। इसलिए अंग्रेजोंका काम उनके सिपुर्द किया गया। ये बंगाली बाबू पञ्जाबीको सरकारी भाषा बनानेका विरोध भी करते रहे।

गाँवोंमें किस्सा-कवियोंने पञ्जाबीका प्रचार जारी रखा। इनके पास न तो अंग्रेजी शिक्षा थी और न अधिक ज्ञान। किन्तु इसी समय मिशनके कामोंमें पञ्जाबी भाषाके प्रयत्न एवं सिंह-सभा के आन्दोलनने पञ्जाबी साहित्यमें एक नया मोड़ लाया।

ई सन् १८६० में शिक्षा विभागका कार्यालय लाहौरमें स्थापित किया गया। शिक्षाकी भाषा उर्दू थी मगर लड़कियोंको पञ्जाबीमें शिक्षा देनेकी छूट दी गई थी। इनकी माँगको पूरा करनेके लिए लाला बिहारीलाल पुरी आदिने शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं और इस प्रकार नए पञ्जाबी गद्यकी नींव पड़ी। ई सन् १८६४ में लाहौरमें ओरिएण्टल कालेज खोला गया। इसके प्रिन्सिपल डॉ लैटीनर देशी भाषाओंके प्रचारके जबरदस्त हिमायती थे। इस कालेजका उद्देश्य देशी भाषाओंका प्रचार करना था। इस कालेजमें पञ्जाबीको प्रमुखता

की गई और पञ्जाबीके प्रथम प्राध्यापक भाई गुरमुखसिंह नियुक्त किए गए। ईसाई पादरियोंने पञ्जाबमें अपने प्रचारके लिए लुधियानाको अपना केन्द्र बनाया। इन्होंने लुधियानाकी उप-भाषाको प्रचलित करनेका प्रयास किया। ई सन १८४९ में इन्होंने ही सर्वप्रथम गुरमुखी टाईपका भी प्रचलन किया था। ई सन १८८२ में पञ्जाब यूनिवर्सिटीकी स्थापना हुई। इससे अंग्रेजी साहित्यकी जानकारी बढ़ने लगी। साथ ही पञ्जाबीके पठन-पाठनसे एक नया पाठक-वर्ग भी तैयार हो गया। ओरिएण्टल-कालेज-कौंसिलको पञ्जाबी उर्दू हिन्दीकी श्रेष्ठ पुस्तकोंपर पुरस्कार देनेका अधिकार दिया गया। पञ्जाब टेक्स्ट बुक कमेटी ने पञ्जाबीमें विशेषतः पुस्तकोंके अनुवाद प्रारम्भ किए तथा मौलिक रचना ओंको पुरस्कृत किया।

नए पञ्जाबी साहित्यपर अपना प्रभाव डालनेवाला दूसरा आन्दोलन सिंह-सभाका था। भाई गुरमुखसिंह, अतार्सिंह आदिने लाहौरमें खालसा दीवान की नींव रखी। सिंह-सभाओंको संगठित करनेवाली यही एक संस्था थी। पञ्जाबके सभी मुख्य शहरोंमें सिंह-सभाकी शाखाएँ स्थापित की गईं। सिंह-सभाओंका मुख्य उद्देश्य पञ्जाबीका प्रचार करना था। इसीके प्रयत्नोंसे पञ्जाबीका सबसे पहला पत्र गुरमुखी लाहौरसे १८८ में प्रकाशित हुआ। उन्नीसवीं सदीके अन्तमे दूसरे पत्र खालसा ने काफी प्रसिद्धि हासिल की। ई सन् १८९९ मे खालसा समाचार का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके कर्णधार भाई वीरसिंह थ जो प्रभातकालीन सूर्यकी भाँति पञ्जाबी-साहित्य-क्षितिजपर उदय हुए।

सिंह सभाके दूसरे लेखकोंमें मोहनसिंह, पूरणसिंह और चरणसिंह शहीद अधिक मशहूर हैं। पूरणसिंहने लिखनेकी एक नई शैली बनाई। इन्होंने निबन्ध एवं कविताएँ लिखी हैं। खुले घुण्ड खुले मैदान और खुले लेख इनकी पुस्तकें प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। चरणसिंह शहीदने पहलीबार पञ्जाबीके हास्यपूर्ण निबन्ध एव कविताएँ लिखीं। य मौजी साहित्यिक पत्रिकाके सम्पादक भी थ।

यहाँपर पञ्जाबीके महान् कवि धनीराम चात्रिकको भी नहीं भुलाया जा सकता। केवल भाई वीरसिंह को ही इनसे ऊँचा पद दिया जाता है। केसर क्यारी नवाँ जहान और चन्दन वाड़ी इनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं।

सन १९१९ से लेकर कुछ वर्षतक सिक्खोंकी अंग्रेजी सरकारसे टक्कर चलती रही। इस आन्दोलनको चलानेवाले अकाली थ। उस समय जनतामें एक उत्साहका सञ्चार हुआ। उसका प्रभाव साहित्य रचनापर भी पड़ा। गुरमुखसिंह और हीरासिंह दर्द भी प्रसिद्ध लेखक हैं। मास्टर तारासिंह भी उपन्यास लिखते रहे हैं।

सम्भवतः १९२० के आस-पास कृपासागरने सर वाल्टर स्काटकी लम्बी कविता 'दी लेडी आफ दी लेक' का पञ्जाबीमें अनुवाद किया। कृपासागरके अनुवादोंकी भाषा ठेठ पञ्जाबी है।

साहित्यिक दृष्टिसे इस समयके साहित्यका कोई विशेष महत्व नहीं है। हां इसमें कोई सन्देह नहीं कि लेखकोंने खूब जी भरकर लिखा और उनके हृदयमें अपने साहित्यको बढ़ानेकी उत्कट प्यास थी।

× × ×

[नोट—सन १९२ से आज तकके पञ्जाबी साहित्यका संक्षिप्त परिचय 'कवि-श्री माला पञ्जाबी—अमृता प्रीतम' मे दिया गया है।]

● ● ●

भाई वीरसिंह

[कवि-परिचय]

भाई वीरसिंह

• • •

भाई वीरसिंहका जन्म पाँच दिसम्बर १८७२ ई० में हुआ था। आपके पिता डा० चरणसिंह ब्रजभाषाके कवि थे और नाना पण्डित हजारासिंह संस्कृत तथा फारसीके विद्वान् थे। उनकी धार्मिक ग्रन्थोंकी टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। बचपनसे आपने पिता और नानासे साहित्यिक तथा धार्मिक प्रभाव ग्रहण किया। भाई वीरसिंहने अमृतसरके मिशनरी स्कूलमें दसवीं दर्जे तक शिक्षा हासिल की। थोड़ी बहुत संस्कृत और फारसी उन्होंने अपने नाना ज्ञानी हजारासिंहसे पढ़ी।

भाई वीरसिंहके दादा बाबा कान्हसिंह सिख इतिहासके प्रसिद्ध अन्वेषक दीवान कौड़ामलकी सन्तान थे, जो मीर मन्नूके समय मुल्तानके गवर्नर थे और मुल्तान पर उनके उपलक्ष्यमें उन्हें 'महाराजा बहादुर' का खिताब मिला था। सिख धर्मके प्रति श्रद्धा और मुसीबतोंके समय सिखोंकी हर प्रकारसे सहायता करनेके कारण सिख इतिहासमें इस महापुरुषको 'दीवान मिट्ठा मल' के नामसे प्रेम और सम्मान दिया जाता रहा है।

बचपनसे ही भाई साहब स्वतन्त्रता-प्रिय थे। उनकी रुचि नौकरीकी ओर न होकर व्यापारकी ओर थी। ई० सन् १८९२ में उन्होंने मित्रोंके साथ मिलकर 'वजीर हिन्द प्रेस' खोला जो पञ्जाबीका अमृतसरमें सबसे पुराना प्रेस है।

भाई साहबका विवाह ई. सन् १८८१ के लगभग हुआ था। इनके दो लड़कियाँ थी। भाई वीरसिंह ई. सन् १८९८ से लेकर अपनी मृत्यु पर्यन्त साहित्य-साधनामें लगे रहे। आप सर्वतोमुखी प्रतिभाके धनी थे। काव्य महाकाव्य गद्य लेख उपन्यास नाटक धार्मिक व्याख्या आदि सब विधाओंमें इन्होंने सफलता प्राप्त की। राणा सूरतसिंह (महाकाव्य) और बाबा नौधसिंह (उपन्यास) इनकी दो अमर कृतियाँ हैं।

भाई वीरसिंहने पंजाबी साहित्यकी लगभग पचास साल तक सेवा की। इतना लम्बा अरसा शायद ही किसी लेखकको मिला हो। ई. सन् १८९८ से पूर्वकी छिट पुट रचनाओंको छोड़कर हम इनकी कृतियोंको तीन भागोंमें बाँट सकते हैं —

प्रथम दौर (ई. सन् १८९८–१९ २) में विशुद्ध धार्मिक भक्ति प्रधान एवं सिख धर्मके प्रचारका लक्ष्य सामने रखकर धार्मिक उपन्यासोंकी रचना सबसे प्रथम भाई वीरसिंहने प्रारम्भ की। इनका सबसे पहला उपन्यास 'सुन्दरी' ई. सन् १८९८ में लिखा गया। यह उपन्यास पंजाबीमें सबसे अधिक पठित पुस्तक मानी जाती है। अब तक इसके लाखोंकी संख्यामें कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। 'सुन्दरी' की मूल कथाका सम्बन्ध एक ऐतिहासिक घटनासे है। इसमें अठारहवीं सदीके सिख आचरण विशुद्ध सिख वीरांगनाओंकी वीरताका आदर्श पेश किया गया है। बिजयसिंह (ई. सन् १८९९) सतवन्त कौर (ई. सन् १९) भी इसी धार्मिक मन्तव्यको लेकर लिखे गए दो उपन्यास हैं। कथा-वस्तु और वर्णनकी दृष्टिसे ये रचनाएँ बड़ी आकर्षक हैं। ये धार्मिक रचनाएँ भाई वीरसिंहके एकपक्षीय विकासकी द्योतक थी।

दूसरे दौर (ई. सन् १९०२–१९२) में भाई साहबने 'राणा सूरतसिंह' जैसे महाकाव्यकी रचना करके पंजाबी साहित्यकी दिशा ही बदल दी। इस महाकाव्यका विषय धर्म तथा दर्शन है। यह महाकाव्य सिरखण्डी छन्दमें है। भाई वीरसिंहने राजा लखदाता सिंह (ई. सन् १९२०) नामक एक नाटक भी लिखा जिसका स्थान पंजाबीके प्रारम्भिक नाटकोंमें सुरक्षित है।

इसके उपरान्त छोटी कविताओंका दौर आता है। 'लहरां दे हार' (ई. सन् १९२१) 'मटक हुलारे' (ई. सन् १९२५) 'बिजलियां दे हार' (ई. सन् १९२७) भाई वीरसिंहके तीन प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। ये कविताएँ भाव-प्रधान हैं। 'लहरां दे हार' और 'बिजलियां दे हार' की छोटी कविताओंमें विशुद्ध रहस्यवादी धार्मिक भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं और भाव एवं दर्शन जैसे कठिन विषयको बड़े स्पष्ट-रूपमें इनमें व्याख्यायित हैं। 'मटक हुलारे' में कविने कश्मीर जैसे रमणीक स्थलोंमें एक अलौकिक चमत्कार देखकर दिव्य आध्यात्मिक आनन्दका अनुभव किया है।

कविताके अतिरिक्त गद्यमें कई ग्रन्थ रचकर पंजाबी साहित्यको देना भाई वीरसिंहका है। 'बाबा नौधसिंह' (ई. सन् १९२४) 'कलगीधर चमत्कार'

(ई सन् १९२५) 'गुरु नानक चमत्कार' (ई सन् १९२६) 'सतवन्त कौर (दूसरा भाग–ई सन् १९२७) इनके गद्य साहित्यके विकासकी सीढ़ियाँ हैं।

धार्मिक भावोंसे ओत-प्रोत भाई वीरसिंहके गद्य साहित्यने सिक्खोंमें समाज-सुधारका एक शक्तिशाली आन्दोलन खड़ा कर दिया था। सिक्खोंकी सामाजिक जागृति भाई वीरसिंहकी सशक्त लेखनीकी देन है। ब्रजभाषाके महान् सिख कवि भाई सन्तोखसिंह रचित गुरु प्रताप सूर्य ग्रन्थ के सम्पादनमें आपने कई वर्षके परिश्रमसे इसे गुरमुखी लिपिमें पाद टिप्पणियों सहित ई सन् १९३५ में प्रकाशित किया।

पञ्जाबी पत्रकारिताके क्षेत्रमें भाई वीरसिंहने खालसा समाचार के प्रकाशनके साथ प्रवेश किया था। उन दिनों पञ्जाबीमें पत्रोंका प्रकाशन अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें था। पञ्जाबी पत्रकारिताके इतिहासमें इस पत्रने एक चेतना नई दिशाको जन्म दिया। बाकी छिट-पुट पत्र प्रकाशित होते रहे, पर कोई वह महान् सफलता और किसीको आयु साल भरकी ही होती थी। उन दिनों पञ्जाबीके किसी पत्रको जीवनदान देते रहना बड़ भारी साहसका काम समझा जाता था। भाई वीरसिंहके गद्य रचनाएं पहले इस पत्रमें धारावाहिक रूपसे छपती थीं तत्पश्चात् उन्हें पुस्तकका रूप दे दिया जाता था। यह पत्र भाई वीरसिंहकी साहित्यिक गतिविधियोंके साथ-साथ सिंह-सभा आन्दोलन का भी प्रतिनिधि पत्र माना जाता था। भाई साहबने सिख धर्मके प्रचार हेतु खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी की नींव रखी थी जिसका मुख्य उद्देश्य सिख-साहित्यका प्रचार करना था।

भाई वीरसिंहकी सेवाओंको देखते हुए पञ्जाब यूनिवर्सिटीने ई सन् १९४९ में आपको डॉक्टर ऑफ ओरिएण्टल लर्निंग की उपाधिसे विभूषित किया था। ई सन् १९५२ में आप पञ्जाब विधान परिषदके माननीय सदस्य मनोनीत किए गए। ई सन् १९५५ में आपकी अन्तिम काव्य-पुस्तक मेरे साईंआँ जीओ को साहित्य अकादमी द्वारा ५००० रु का पुरस्कार प्रदान किया गया। जीवनके अन्तिम दिनोंमें आप बहुत कम लिखने लगे थे किन्तु खालसा समाचार द्वारा आपके विचार फिर भी पाठकों तक पहुँचते रहते थे। भाई वीरसिंहके जीवन-दर्शनको दृष्टिमें रखते हुए कहा जा सकता है कि आप सिख साहित्यके सबसे बड़े कवि थे। आपने सबसे अधिक लिखा। आप सिख विचार-धाराके प्रबल समर्थक रहे किन्तु फिर भी आप ठेठ भाषा विषय तथा प्रकृति-वर्णनकी दृष्टिसे उच्च कोटिके साहित्यकार थे। आपने गद्य-पद्य दोनोंमें मुखालिफत ला दिया। पञ्जाबी संस्कृति और जीवनकी जो झलक आपकी रचनाओंमें मिलती है वह वारिसशाहके कविताके अतिरिक्त कहीं नहीं मिलती। भाई वीरसिंह सिख विचार-धाराके कवि होते हुए भी पञ्जाबी जीवनपर पूरी तरह छा गए थे।

काव्य-शैली

भाई वीरसिंह एक साधारण-सी बातको भी असाधारण बना देनेमें दक्ष हैं। इनका प्रकृति चित्रण बड़ा ही सजीव है। प्रकृति-वर्णनके अलावा भाईजीने वियोगकी पीड़ाको बड़े ही हृदयस्पर्शी शब्दोंमें गूँथा है। जहाँ एक ओर इनके वर्णनमें विस्तार है वहीं दूसरी ओर थोड़े शब्दोंमें अपना भाव प्रकट करना भी ये जानते हैं। इनकी शैलीमें कहीं-कहीं फ़ारसीका रङ्ग आ जानेसे काव्य-कलापर कुछ चोट अवश्य पहुँचती है।

अलङ्कार कविताके आभूषण हैं। भाई वीरसिंहने प्रसङ्गानुकूल अलङ्कारोंका प्रयोग एक मँजे हुए कविकी भाँति किया है। मुहावरों द्वारा शैलीको रोचक तथा जोरदार बनाया है। कविता और सङ्गीतमें बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। इन्होंने अपनी कवितामें सङ्गीतकी लय पैदा करनेके लिए अनुप्रासोंका भी प्रयोग किया है। प्रमाणित और ऐतिहासिक सङ्केतोंके साथ नवीन सङ्केत और प्रतीकोंका प्रयोग भी किया है। सिख गुरुओंकी वाणीके गहरे अध्ययनके कारण गुरु वाणीकी शब्दावली आपकी कवितामें यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है।

कवितामें संगीत

भाई वीरसिंहकी कविताओंमें सङ्गीतकी प्रधानता है। कोई-कोई कविता तो पाठक स्वयं ही गा उठता है। इसका कारण यह है कि भाई साहबका प्रारम्भिक जीवन धार्मिक रङ्गमें रँगा हुआ और सिख धर्मके अनुकूल ढला हुआ था। गुरु-वाणीके सतत अभ्यासके कारण ये सङ्गीतकी ओर उन्मुख हुए। सिख गुरुओंकी सारी वाणी सङ्गीतका एक ऐसा स्रोत है जो कभी नहीं सूखता। सिख-परम्पराके अनुसार सङ्गीतकी बड़ी महिमा है। गुरु-धाम गुरुद्वारोंमें गुरु वाणी गाई जाती है। गुरु-घरका कोई ऐसा नहीं मिलेगा जो सङ्गीतमें पारङ्गत न हो। जो गुरु वाणीके सुन्दर शब्दोंको लय ताल और स्वरमें बोलना न जानता हो।

भाई वीरसिंह इन्हीं संस्कारोंको लेकर बड़े हुए थे। इनके रोम रोममें गुरुवाणीका वह सङ्गीत रम गया था जिसे वे बचपनमें ही सुनते चले आए थे। बाद चलकर जब इन्होंने काव्य-क्षेत्रमें कदम रखा तो यह सङ्गीत-संस्कार इनकी कविताओंमें भी ढल गया। सङ्गीतके वातावरणकी प्रधानता आरम्भ [illegible] ही रही है। प्रेमकी भावना जहाँ कल्पनाको जन्म देती है वहाँ एक मौलिक सङ्गीतकी जन्म-दात्री भी बन जाती है। भाई वीरसिंहके स्वभावकी कोमलताके कारण इनका सङ्गीत भी एक कोमलता लिए हुए है। इनकी कविताओंमें भरे हुए सङ्गीतमें पाठक एक अजीब मस्तीमें डूब जाता है, उसीमें लीन हो जाता है।

काव्य-कल्पना

भाई वीरसिंहकी काव्य-कल्पनाका जिक्र करते हुए हम यह बात भी देखेंगे कि उनकी कवितामें नवीनता किस हद तक है। रूप-विधानकी दृष्टिसे भाई वीरसिंहके काव्यमें एक नवीनता अवश्य दृष्टि रखनेवालेको भी दृष्टिगोचर होती है। भाई साहबके महाकाव्य 'राणा सूरतसिंह' के 'सिरखण्डी' छन्दसे उत्पन्न काव्य प्रवाह हमारे इस कथनकी पुष्टि कर देता है। इस छन्दका प्रयोग गुरु गोविन्द सिंहने अपनी एकमात्र पञ्जाबी कविता 'चण्डी दी वार' में सफलतापूर्वक किया था। तदुपरान्त 'हीर-वारिस शाह' से पञ्जाबमें 'बैत' छन्दका प्रचलन हुआ जिसने अपनी एक अलग परम्परा कायम कर ली। इसके पश्चात् पञ्जाबी साहित्यमें 'राणा सूरतसिंह' ही एक ऐसा महाकाव्य है जो अपना सानी नहीं रखता। सिरखण्डी छन्दके प्रवाहमय बन्धन इसमें वह नवीनता लाई है जो भाई वीरसिंहकी सारी काव्य-रचनाओंमें कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती।

कल्पना काव्यका एक स्वाभाविक गुण है। साहित्यमें रूप और विषयके दोनों पक्षोंको यह नई दिशा देती है। भाई वीरसिंहकी काव्य-कल्पनाको परखनेके लिए कविके जीवन दर्शनको समझना आवश्यक है। भाईजीने अपना सारा जीवन-दर्शन भारतीय संस्कृतिके युगोंसे चले आ रहे विशाल आत्म-दर्शनके मनके मनकोंसे उधार लिया है। इस दृष्टिसे वे नवीन नहीं हैं वे परम्परावादी हैं।

पञ्जाब महान् रोमाण्टिक गाथाओंकी जन्म-भूमि है प्रेम तथा सौन्दर्यकी रङ्गीन गाथा है एवं वीर-गाथाकी कविता है। इस धरतीके कण-कणमें प्रेम और सौन्दर्य भरा यौवन नाचता-थिरकता। पाँच नदियोंके रूपमें सिम्फनीकी झंकार सुनाई देती है। यहाँ पूर्णसिंह वाल्ट व्हिटमैनके साथ हाथ मिलाते हैं यहाँ गुरु नानक और शाह मुहम्मद विदेशियों द्वारा अपने देशका पैरों तले रौंदा जाना देखकर तड़प उठते हैं। उनकी यह तड़प जब काव्य-कल्पनाका रूप लेती है तो पाठकोंके हृदयोंमें देश प्रेमकी एक अविरल धारा प्रवाहित हो उठती है।

भाई वीरसिंहने जो महान् काम किया वह था पञ्जाबी भाषाको परम्परागत सन्त-भाषाके तंग घेरेसे निकालकर एक नया रूप प्रदान करना। जिस समय भाई साहबने साहित्यिक क्षेत्रमें प्रवेश किया उस समय पञ्जाबीको भाषा नहीं वरन् गँवारोंकी बोली समझा जाता था। पञ्जाबके अधिकतर विद्वान् कवि ब्रजभाषामें कविता लिखना बड़े गौरवकी बात समझते थे। भाई वीरसिंहके पिता डा० चरणसिंह ब्रजभाषाके अच्छे कवि थे। किन्तु भाई वीरसिंहने पञ्जाबी भाषाको एक पूर्ण भाषा बनानेमें जो साधना की वह कभी नहीं भुलाई जा सकती।

प्रकृति-वर्णन

पञ्जाबी कविताको भाई वीरसिंहकी प्रकृति वर्णनकी जो देन है वह अद्वितीय है। इससे पूर्व किसी कविने इतनी गहराई और एकाग्रतासे प्रकृतिके साथ एकात्मकता स्थापित नहीं की थी। भाई साहब प्रकृतिके सौन्दर्यको देखकर मस्तीमें झूम उठते हैं। कोमल भावोंको व्यक्त करनेवाली इनकी कलम प्राकृतिक छटाको निहारते ही तेज गतिसे चलने लगती है। ये जब कश्मीरके सौन्दर्यका वर्णन करते हैं तो किसी अनूठे प्रभावसे मन मस्तीमें डूब जाता है। कवि वैरी नाग* के सौन्दर्यको देखकर पुकार उठता है —

वैरी नाग! तेरा पहला झलका
जद अँखियाँ विच वजदा
कुदरत दे कादर दा जलवा
की सवा इक सिजदा।
रंग फिरोजी झलक बलौरी,
डलक मोतियाँ वाली,
वह बिच आ आ जम्म होवें
थी वेख वेख नहीं रजदा।
ना कुई भार मुरोल गुनीबे
फिर संगीत रस छामिया
चुप चाप पर जन तेरे विच
कविता रंग—जमाइआ।
लरद् लरद् कर छुहियाँ तैनूँ
वह लहर विच जावे,
मधुर गंभीर अडोल मुहाबे!
ते फिहा कौन कमाइआ?

[वैरी नाग! जब तेरी प्रथम झलक आँखोंमें समाती है तो प्रकृतिके मुख्तारका जलवा मेरे समक्ष नतमस्तक हो जाता है। तुम्हारा फिरोजी रङ्ग बिल्लौरी झलक एवं मुक्ता-सी चमक दमक आत्मामें समाती चली जाती है। तुम्हें देख-देखकर मन भरता नहीं है। कोई भय और ताप सुनाई नहीं देता है। फिर भी मधुर-सा नाद बना रहा है। मौन रूपमें कविता तुममें व्याप्त है। मेरे पीतम स्पर्शसे आत्मा आनन्द-विभोर हो उठती है। तुम गहन गम्भीर एवं अडिग यह कैसा योग धारण किया है?]

---

* कश्मीरका एक झरना।

फूलोंसे इन्हें प्रेम है। गुलदाउदी नर्गिस और गुलाबका सौन्दर्य इन्हें प्राकृतिक रङ्गमें रँग देता है। गुलाबके फूलका एक वर्णन लीजिए —

धरती गोद बलाय
मैं हुल बिच खेलियो
मिट्टी जड़ा मडाय
मैं भोजन खिंचियो।
रग रग पीता नीर
मैं मालो नसरियों
हो सिया मैं गमभीर
तै मेलो चलियो।
बादल बरसी सर
मैं पाणी खिंचियो
न्हाता मैं रज रज
तै न्हा न्हा निखरियो।
सूरज पाली धूप
मैं किरणा झीलियां,
निपी कैती बहू
मैं बणिया मौतियां।
चानण तै निप कढ
मैं लीला धुप लों
लई माप बिच पड
रहू मानों धुप मैं।
साथ चाँदनी धाल
मैं सुता रात में
झलक तारियां माल
मैं लइयो लोरियां।
म्हेरा लिया बिठाल
मैं फूलेदार सो
झुई न देय उठाल
मैं राती गुलियां।

[मैं धरतीकी गोदमें क्रीड़ा करता रहा। मिट्टीमें जड़ जमाकर मैंने भोजन प्राप्त किया है। बहुते मार्गोंमें पी भरकर पानी पिया है एवं ओसको

चमककर मैं आर्द्र हुआ हूँ। आकाशसे मेघोंको बुलाकर मैंने पानी सींचा है। उस पानीसे खूब नहाकर मैं निखर गया हूँ। सूर्यसे मैंने किरणें ऐंठी हैं। अपनी आत्माको उष्णता प्रदान करके मैं बड़ा और फूला-फला हूँ। चाँदनी की घास ओढ़कर मैं रात्रिको सोता हूँ। तारोंकी चमकसे मैंने लोरियाँ ली हैं। अँधेरेको मैंने पहरेदार बनाकर बिठा लिया है ताकि मुझे कोई जगा न दे।]

भाई साहब प्रकृतिको कोई भौतिक वस्तु नहीं मानते वे इसे अदृश्य शक्तिका चमत्कार समझते हैं। प्रकृतिके सौन्दर्यका इतना आकर्षक वर्णन केवल भाई वीरसिंहकी कविताम ही मिलता है। प्रकृतिमें वे अपने आराध्य देवकी झलक देखते हैं। कवि प्रातःकालमें खिले हुए गुलाबके सौन्दर्यमें किसी अलौकिक छविके दर्शन करता है —

अज्ज नूर दे तड़के
वड़ीं मैं रही सी सवेर अंगड़ाइयाँ
पए फुल्लां दी गोद विच
तुसीं खेल रहे सओ मेरे साइयाँ !
किवें हां किवें ! आ गए सओ
ओस निक्की गोद विच ?
मेरे ऐडे वडे विशाल साइयाँ

[आज प्रातः ज्योतिर्मय उषा अँगड़ाई ले रही थी तब एक खिले हुए स्निग्ध गुलाबमें तुम खेल रहे थे। इतने विशाल मेरे प्रियतम! कैसे? हां कैसे आ गए उस छोटी-सी गोदमें?]

इनकी दृष्टिमें प्रकृति ही मानव समाजकी सारी समस्याओंका एक मात्र हल है। इनकी धारणा है कि जो व्यक्ति एक बार प्रकृतिके रहस्यमय रूपको पहचान गया वही सुखी है। सुखकी अन्य सांसारिक परिभाषाओंमें इनका विश्वास नहीं है। उनकी तरङ्गमें वे उदासीन हो जाते हैं।

भाई वीरसिंह प्रकृतिके अमर्त्य रहस्यकी खोज करते हुए कहते हैं कि प्रकृति निहारनेकी वस्तु है भोगनेमें आनन्द नहीं। यह एक अनूठा काम है जिसमें मनुष्य हरेक वस्तुको देखकर रस भोगी हो सकता है। भाई साहब बच्चोंकी भाँति प्रकृतिके चितेरे हैं। वे मानते हैं कि प्रकृति मनुष्यकी माँ है जो अपनी सुन्दर गोदमें बैठाकर मनुष्यको लोरियाँ देती है।

देश-प्रेमकी भावना

आलोचकोंने भाई वीरसिंहको अपने युगकी धाराओं अथवा प्रभावोंसे निर्लिप्त एकाकी व्यक्ति रखकर उनकी कड़ी आलोचना की है। इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि भाई साहब उन प्रगतिशील आलोचकोंके माप-दण्डके अनुसार एक प्रतिक्रियावादी कवि हैं किन्तु कुछ विचारशील आलोचक इन्हें अपने युगकी परिस्थितियोंके अनुसार एक सजग और मानवतावादी कवि मानकर उनके प्रतिक्रियावादी होनेकी मान्यताको अस्वीकार कर देते हैं।

भाई वीरसिंहके जीवन-दर्शनमें मानव-प्रेम अथवा सामाजिक सेवाको विशेष महत्त्व प्राप्त है। सिख धर्मका यह सिद्धान्त जिसके द्वारा जीवन-दान एवं बलिदानका पाठ पढ़ाया गया है भाई वीरसिंहकी कविताओंमें जगह-जगह बिखरा पड़ा है। देशकी पराधीनता इनको अखरी है। गङ्गाराम इनकी स्वतन्त्रता सम्बन्धी एक लम्बी कविता है, जिसमें भारतकी स्वतन्त्रताके लिए एक तड़प है व्यथा है और है एक दर्द।

भाई वीरसिंहको अपने देशकी प्रत्येक परम्परा—धर्म संस्कृति और कला इतनी अधिक प्रिय है कि वे अपने आपको किसी एक धर्म या मतमें बँधा हुआ नहीं देखते। वे एक सच्चे राष्ट्रवादी हैं। उनका विचार है कि कोणार्क कला मूर्तिकला चित्रकला कविता आदि सारे संसारकी कलाएँ हैं। इनका सहज-सौन्दर्य मनुष्य-मात्रकी पूँजी है।

महान् परम्पराके वारिस

प्राकृतिक छटा प्रेम अथवा किसी वीर योद्धाकी अद्वितीय वीरताका अनुभव करके मनुष्य बरबस गा उठा। उसके शब्द संगीत और तालका सहारा लेकर कबीले या टोलेकी प्रेरणा बन गए और इसीको कविता कहा जाने लगा। यही दूसरोंके लिए बोलने या गानेवाला कवि समाजका प्रतिनिधि और आवाज बन गया। कविता एक राष्ट्रकी बहुमूल्य सम्पत्ति बन गई।

प्राचीन कालसे ही भारतीय-काव्य-परम्परा धार्मिक धाराकी पोषक रही है। हमारे देशका अनूठा वाङ्मय ही इस परम्पराके अनुकूल रहा है। पञ्जाबीके प्रथम सूफी कवि बाबा फरीदने बारहवीं सदीमें इस आध्यात्मिक कविताकी परम्पराको आगे बढ़ाया। इसी कालमें पञ्जाबीमें वीरोंकी वार लिखी गई। ये वारें तो गुरु-ग्रन्थ साहबमें संगृहीत हैं।

पञ्जाबी कविताकी सबसे शक्तिशाली परम्परा आध्यात्मवादकी थी। नाथ पन्थी योगी और बाबा फरीदके बाद सिख गुरु इस परम्पराके महान् वारिस थे।

पञ्जाबी कवितामें अध्यात्मवादी परम्पराको सूफी कवितासे अत्यधिक बल मिला। भाई वीरसिंहकी कवितापर सूफी-दर्शनका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

भाई वीरसिंह सिख कवि अवश्य थे क्योंकि सिख धर्मकी दीक्षा उन्हें घरमें अपने बचपनसे मिली थी किन्तु समूचे तौरपर पञ्जाबी साहित्यके आदि कालसे लेकर अपने समय तककी परम्पराओंको ग्रहण किया था। वे पञ्जाबी साहित्यके नवयुगके निर्माता थे। एक अच्छे वारिसकी भाँति इन्होंने पञ्जाबी कविताको पूर्व कवियोंसे उद्भूत आगे बढ़ाया।

१० जून १९५७ ई० में पञ्जाबी भाषाके इस महान सन्त-कविका निधन पचासी वर्षकी आयुमें हो जानेसे पञ्जाबी साहित्य-मण्डलका एक ऐसा नक्षत्र टूट गया जिसकी पूर्ति होनी असम्भव है।

• • •

भाई वीरसिंह

[काव्य-सञ्चय]

१ समां



रही वास्ते वस्स, समें ने इक न मन्नी ।
फड़ फड़ रही अरोक, समें खिसकाई कन्नी ।
किवें न सकी रोक, अटक वो पाई मन्नी ।
मिळे अपने वेग, गया टप बन्ने बन्नी—
हा ! अबे समाल इस समें नू,
कर सफल उमंगा जांवदा ।
इह ठहरन जाच न जाणदा,
लंघ गया न मुड़के आंवदा ।



२ त्रेल तुपका



मोती वांगू चमकदा तुपका इह जो त्रेल ।
गोरी पैंठ गुलाब दी हस हस करदा खेल ।
वासी देश अरूप दा करदा प्यार अपार ।
रूपवान है हो गया प्यारो गोद बिचाल ।
मरघी किरन इक आवसी लैसी एस सुकाय ।
लोका मत दुई पौण दा देवे धरत गिराय ।
नित प्यार जिसदा स्यांबदा करे अदपों रूप ।
मरखो प्रीतम है दुई नित फिर करे अरूप ।।

१ समय

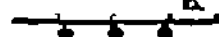


मने वड़ी अनुनय विनय की किन्तु समय ने मेरी एक न मानी। मैं पकड़ती ही रह गई, मगर समय' अपना पल्ला छुड़ा ले गया। मैंने बड़ प्रयास किए, पर उसे रोक न सकी। अपनी तीव्र गतिसे वह सब सीमाओंको लाँघता हुआ चला गया।

ऐ मनुष्य! इस गतिशील समयको तू देख। यह रुकना नहीं जानता। एक बार जो बीत गया, वह फिर लौटकर नहीं आएगा।



२ ओसकी बूँद



मुक्ताके समान चमकती यह ओसकी बूँद गुलाबकी गोदीमें बैठ हँस-हँसकर क्रीड़ा करती है। अदृश्य देशका वासी यह गुलाबका फूल इसके लिए अपना सारा प्रेम उँड़ेल देता है, और यह उसकी प्रेममय गोदमें बपमान हो गया है। सूर्यकी एक किरण आएगी। वह इस ओसकी बूँदको अपनेमें छिपा लेगी कि कहीं वायुका कोई झोंका इसे धरा पर गिरा न दे।

ऐसे ही प्रेमकी आकर्षण-शक्ति मनुष्यको अदृश्यसे रूपवान बना देती है, किन्तु उसे फिर अदृश्य बना देनेवाला कोई सर्व शक्तिमान भी है।



३ पलपला



जिन्हां उच्चांईमां उत्तों,
बुद्धि संम साड़ बठी,
मस्तो मस्ती उत्पे दिस,
मारवा उडारियाँ।
प्यासे मनडिठे मास
बुस्क सम बाम उपे
रस से सक्र चढ़े
मूमी औण प्यारियाँ ॥१॥

'झानो सानूं होवृवा ते
'बहुमो बोला माखवा ए —
'मारे गए जिन्हां साईमां
पुठों पार तारियां। ॥२॥

"बैठ वे झानी! बुधी
मडसे बी कब बिस्व
'बसबस वे वेसा साडोयां
सग गईयां मारियां।" ॥३॥

३ भाव-लोक



जिस ऊँचाईसे बुद्धि अपने पंख जलाकर धरापर आ गिरी, मेरा मन बरबस वहाँ पहुँचनेके लिए आकुल है। वहाँ किसी अदृश्य प्यालेको मेरे ओंठ छू लेंगे, तो मैं रस विभोर हो झूमने लग जाऊँगा ॥१॥

ज्ञानका दावेदार मेरा मार्ग अवरुद्धकर खड़ा हो गया है। अन्ध-विश्वासी कहता है—जो बुद्धिसे परे पहुँचनेका प्रयास करते हैं, वही गिरते हैं ॥२॥

ज्ञानके दावेदारो! तुम बुद्धिकी नींवमें जकड़े बैठे रहो। मैंने तो भाव-लोकसे मित्रताकी गाँठ बाँध ली है ॥३॥



४ टुकड़ी जग तों न्यारी

धरतीं दे विच्च 'कुदरत देवी सालू नवरीं आई ।
हुस्न मडम विच्च बड़ी सेजदी सुखियां छब्बर लाई ।
चोड़ी मे इक मुठ भर लीती इस विच्च जो की माया
परबत टिब्बे भते करेवे विच्च मैदान सुहाया ।
चश्मे, नाले, नदियां, झीलां निक्के जिवें समुन्दर ।
ठंडियां छावां मिठ्यां हवावां बन बागां जिहे सुंदर ।
बरफां, मींह, धुप्पां ते बदल रुतां मेवे प्यारे ।
धरती नाल नजारे आए उस मुठी विच्च सारे ॥१॥

मुहम्मी मे अस्मान बनाके धरती बस तका के ।
इह मुठी खोहली ते धुड़िया सब कुछ हेठ लका के ।
जिस थावें धरती ते आके इह मुठ डिग्गी सारी ।
ओस थां 'कश्मीर बन गया टुकड़ी जग तों न्यारी ॥२॥

है धरती पर 'पूह अस्मानी
सुन्दरता विच्च जिसदे ।
धरती दे रस, स्वाद, नजारे,
'रमज अरार दी कसदे ॥३॥

———

४ टुकड़ी जगसे न्यारी



सौन्दर्य लोकमें क्रीड़ाएँ करती हर्षसे मदमाती प्रकृतिकी देवी मैंने देखी। उसने अपनी मूठमें पर्वत टीले रमणीय मैदान और झरने नदियाँ झीलें भर लीं। ये सब ऐसे थे जसे छोटे-छोटे द्वीप हों। शीतल छाया भीनी हवा और सुन्दर वर्नोंकी महक हिम-कण वर्षा धूप और बादल, मीठे मौसमी फल—ये सभी एक दैवी दृश्य सरीखे उसकी मूठमें आ गए ।।१।।

दूर व्योमसे पृथ्वीको निहारते हुए प्रकृतिकी देवीने अपनी मुट्ठी खोल दी। जहाँपर वह मूठ गिरी वहाँ संसारकी अनूठी टुकड़ी कश्मीर-का जन्म हो गया ।।२।।

रस सुगन्ध और दृश्योंके आयाम लिए यह टुकड़ी देव-लोकसे धरापर उतर आई ।।३।।



४ टुकड़ी जग तों न्यारी

अरशां दे विच्च 'कुदरत देवी' सानूं नजरीं आई ।
हुस्न-मंडल विच्च खड़ी सोहणी खुशियां छहबर लाई ।
दोड़ी ने इक मुठ भर लीती इस विच्च की की माया
परबत टिब्बे असे करेवे विच्च मैदान सुहाया ।
चश्मे, नाले, नदियां, झीलां जिवके दिसें समुन्दर ।
ठंडियां छावां मिठ्ठियां हुवावां वन बागीं झिहे सुंदर ।
बरफां, मींह, धुप्पां ते बदल रत्तां मेवे प्यारे ।
भरवी नाल नजारे भाए उस मुठी विच्च सारे ॥१॥

सुहणी ने अस्मान चढ़ाके धरती वल तका के ।
इह मुठी खोहली ते मुहिया सब कुछ हेठ तकाके ।
जिस थावें धरती ते माके इह मुठ डिग्गी सारी ।
ओस थां 'कश्मीर बण गया टुकड़ी जग तों न्यारी ॥२॥

ई धरती पर 'छूह अस्मानी
मुस्करता विच्च सिन्के ।
धरती दे रस, स्वाद, नजारे,
'रमज भरया दो कसके ॥२॥

४ टुकड़ी जगसे न्यारी

सौन्दर्य लोकमें क्रीड़ाएँ करती हर्षसे मदमाती, प्रकृतिकी देवी मैंने देखी। उसने अपनी मूठमें पर्वत टीले रमणीय मैदान और झरने नदियाँ झीलें भर लीं। ये सब ऐसे थ जैस छोटे छोटे द्वीप हों। शीतल छाया भीनी हवा और सुन्दर वर्णोंकी महक, हिम-कण वर्षा धूप और बादल मीठे मौसमी फल—ये सभी एक दैवी दृश्य सरीखे उसकी मूठमें आ गए।।१।।

दूर व्योमसे पृथ्वीको निहारते हुए प्रकृतिकी देवीने अपनी मुट्ठी खोल दी। जहाँपर वह मूठ गिरी वहाँ संसारकी अनूठी टुकड़ी कश्मीर-का जन्म हो गया।।२।।

रस सुगन्ध और दृश्योंके सामान लिए यह टुकड़ी देव-लोकसे धरापर उतर आई।।३।।

५. किरकर



कद सिरी ऊपर मू डुरिया बस आकाशां जावां।
ऊपर मूं तकां रम्म बने भ्रांति न होरये पावां।
शहर गिरां महल नहीं माड़ो कुल्ली डोक न भावां।
मींह हमेरो गड़े धुप्प बिच्च मरां सिर बिन थावां।
सो मरस बे मासी बसे होर लालसा माहीं।
गिठ थाऊ धरसी, तों सीसी बयां, ठिकां, इस माहीं।
फुल्लां, फलां, सिड्डां, रस चोवां रह मछोल तुर जावां।
कुस्सी, गुस्सी, चुस्सी दुनियां! बिन मंगें मर जावां ।।१।।

मींह दा पीवां पाणी दुनियां पौण ससके जीवां।
सवियां तों इसपित न जोगी सवियां हुवें टिकोवां।
छेवां पेड़ करावां माहीं हां सिरकस निर्गुणियां
मेरे चोगा दी हूं परले हाय! कुहाड़ा, दुनियां! ।।२।।



५. बबूल



[स्थिर एवं अडिग रूपसे खड़ा बबूलका वृक्ष अपने हृदय-तरंगित भाव व्यक्त करता हुआ कहता है।]

मैं आकाशकी ओर सिर ऊँचा किए खड़ा हूँ। भगवानकी ओर ऊपर निहार रहा हूँ। मेरी दृष्टि स्थिर नहीं है। न शहर, न ग्राम और न किसी महल या झोपड़ीकी मुझे तलाश है। मेह हो चाहे आँधी—सारा दिन नंगा खड़ा रहकर बिता देता हूँ। देव-लोकके बिना मुझे और कोई लालसा नहीं है। धरतीसे माँगकर मैंने एक हाथ भूमि ले रखी है यहीं मैं बढ़ता हूँ और यहीं मेरा ठिकाना है। फूलता-फलता, रस टपकाता एक दिन संसारसे बिना कुछ माँगे एकाकी चल देता हूँ ॥१॥

मैं बादलोंका पानी पी साँसोंमें पवन भरकर जीता हूँ। सदियोंसे स्थिर खड़ा योगी हूँ। न किसीसे मेरी शत्रुता न किसीसे मेरा वैर है। मैं तो एक विरक्त निर्गुण हूँ। फिर भी संसारकी कुल्हाड़ी सदा मेरे सिरपर रहती है ॥२॥



५ किंकर

एक सिरी ऊपर नू डुरिया यक आकाशां जावां ।
ऊपर नूं तकां रब्ब मने शांति न होरथे पावां ।
शहर गिरां महल माहीं माड़ो दुःखी ढोक न मासां ।
मौंह हमेरी गड़े धुप्प बिन्न मये सिर बिन धासां ।
जो मरता दे याली बये होर लालसा माहीं ।
मिठ थाऊ घरती, तों लीती बर्फां, टिको, इस माहीं ।
फुल्लां, फलां, खिड़ां, रस चोवां एह अयोस दुर जावां ।
दुःखी, गुस्सी, भुक्खी दुनियां ! बिन मौतों मर जावां ।।१।।

मौंह दा पीवां पानी दुनियां पीण सबक्के जीवां ।
सदियां तों इसधित मे जोगी सदियां हुवें टिकोसां ।
ऐसी खेड़ नराचां माहीं हां विरक्त निर्गुणियां
मेरे चोगा बी है पल्ले हाय ! दुहारा, दुनियां ! ।।२।।

---

५. बबूल



[स्थिर एवं अनन्य रूपसे खड़ा बबूलका वृक्ष अपने हृदय-तरंगित भाव व्यक्त करता हुआ कहता है।]

मैं आकाशकी ओर सिर ऊँचा किए खड़ा हूँ। भगवानकी ओर ऊपर निहार रहा हूँ। मेरी दृष्टि स्थिर नहीं है। न शहर, न ग्राम और न किसी महल या झोंपड़ीकी मुझे तलाश है। मेह हो चाहे आँधी—सारा दिन नंगा खड़ा रहकर बिता देता हूँ। दब-छाकके बिना मुझे और कोई लालसा नहीं है। धरतीसे माँगकर मैंने एक हाथ भूमि ले रखी है यहीं मैं बढ़ता हूँ और यहीं मेरा ठिकाना है। फूलता-फलता, रस टपकाता, एक दिन संसारसे बिना कुछ माँगे एकाकी चल देता हूँ ॥१॥

मैं बादलोंका पानी पी साँसोंमें पवन भरकर जीता हूँ। सदियोंसे स्थिर खड़ा योगी हूँ। न किसीसे मेरी समता न किसीसे मेरा वैर है। मैं तो एक विरक्त निर्गुण हूँ। फिर भी संसारकी कुल्हाड़ी सदा मेरे सिरपर रहती है ॥२॥



६ अवंतीपुरे दे खंडर

अवंतीपुरा की रह गया बाकी,
दो मन्दिरां दे ढेर।
बीत चुकी सभ्यता दे खंडर,
दसदे समें दे फेर।
साखी भर रहे ओस मन दी
जिस विच मोतियाबिन्द।
हुनर पछानण बालों छाया,
गुण वी रही न जिन्द।
'जोश-मजहब' ते 'कदर-हुनर' दी,
रही न ठीक तमीज।
राजी करदे होरां-ताईं,
आपू बने मरीज।
बुत पूजा? 'बुत फेर हो गए,
'हुनर न परतया, हाय!
मर मरके 'बुत फेर उगम पए,
गुण नूं कौण जीवाए?

६ अवन्तीपुराके खण्डहर

*अवन्तीपुरा दो मन्दिरोंका ढेर मात्र रह गया है। बीती सभ्यताके ये भग्नावशेष समयके हेर फेरकी ओर इंगित कर रहे हैं।

और मोतिया-बिन्दवाली उस आँखकी साखी भर रहे हैं जिसे कला-कौशलकी परख नहीं रह गई है। धर्मान्ध पुजारी कलाकी कद्र करना भूल गए हैं। मूर्ति-पूजाने फिर सिर उठाया है।

किन्तु हाय! वह कला कहाँ गई? मर-मरकर 'मूर्तियाँ जम आईं। कौन है जो फिरसे गुण को जीवन-दान देगा।

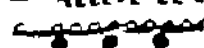
---

* श्रीनगर और अनन्त नागके बीचके दो प्राचीन मन्दिरोंके खण्डहर।

शालामार

जोगी खड़े बजार, शांति बस रही
नहर बहे बिचकार खुसी प्रवाह ज्यों।
हरिया भरिया घास मखमल घाह दा,
छाई सहज दा रंग शांति एकांत है।
फिर आई झनकार बाणी बह पिया
मस्त संगीत उचार मन गूं मोह रिहा।
रंग बलौरी बस झिम्मदे दा लसे,
फिर कुस कदमां लंघ हेठां जांद दा ॥१॥
बिच फुहारियां जाय उपर आंवदा,
कलाबाजियां जाय उच्छले खेडदा।
सावे शाहा जोर पहूल उचाल नूं,
पहुचां मार उछाल पर 'सिख' रोकदी।
उच्चा जांदा 'सिख' फिर सै डेगदी,
उच्छल गिरन दा नाच हुंदे जा रिहा।
बिच विचाल मसीन बारां-दरी है,
धाम रंग दा संग मिसलों बनी है।
इसदे चार चुफेर पाणी खेडदा,
उठण झिग्गण दा नाच मासे रास है
मानो सावन मींह हुंदे प रिहा।
जो अस्मानों झिम्म हेठां आंवदा,
इह हेठों धाह पाड़ उच्छल पसरदा।
इसदी धुनि संगीत चमक सुहावनी ॥२॥
बैठियां इस बिचकार फूटे देखदी,
कुदरत मानो आप मस्त पई नाच है।
इह रंग राग अपार बसके मोर जो,
फिर अग्गे नू जाय हेठां तिलकदे ॥३॥

७ शालीमार



चनार-रूपी योगी खड़े हैं। शान्तिकी वर्षा हो रही है। धृतिके प्रवाहकी भाँति बीचमें नहर बह रही है। सहज एकाग्रताके रंगमें रँगी हरी भरी मखमली घास बिछी हुई है। झर-झर बहते झरनेके पानीका कलरव बड़ा मोहक है। बिल्लौरी रंगकी चमक लिए कुछ पग आगे फव्वारोंके ऊपरसे हो-होकर वह कलाबाजी खेल रहा है ॥१॥

वह एक अजीब उछल-कूदका नृत्य कर रहा है, चाहता है कि मैं उछलकर ऊँचा पहुँच जाऊँ, किन्तु 'आकर्षण' उसे फिर नीचे पटक देता है। बागके मध्य एक बारा-दरी है। उसके चारों ओर पानी सन्ध्याके संग मिलकर अठखेलियाँ करता है। गिरकर उठने फिर गिरनेके ये नृत्य-संगीत ऐसे हैं जैसे सावनकी फुहार बरस रही हो। वह आकाशसे धरापर बरसती है यह भूमिसे राह निकाल ऊपरको उछलता है। इसकी संगीतमय ध्वनि सुहानी चमक-दमक झूलेका-सा आनन्द देती है ॥२॥

ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रकृति स्वयं नृत्य कर रही हो। अपना रूप रंग, संगीत छिड़ककर वह फिर आगेकी ओर फिसल जाता है ॥३॥

८ कंबदे पत्थर

मारतब नू मार पइयां
　　'होई मुद्दत' कहिन्दी कोई।
पर कम्बदे पत्थरां विच हुण तक
　　सानूं सी सही होई।
'हाय, हुनर से हाय विपा,
　　'हाय देस दी हालत!
'हाय हिन्द फस फाड़ियां वाले!
　　हर हिस कहिन्दी रोई।

---

९ कबदी कलाई

सुपने विच तुसीं मिले असानूं असां घा गलवकड़ी पाई।
निरा नूर तुसीं हत्थ न आए साडी कम्बदी रही कलाई।
घा चरणां ते सीस निवामा साडे मत्थे छोह न पाई।
तुसीं उच्चे असीं नीवें सां साडी पेश न गईया काई।
फिर सड़ फड़ने नूं उठ दौड़े पर सड़ आहे 'बिजलीलहरां
उडदा जांदा पर ओह अपणी छाहे सानूं गया लाई
मिट्टी चमक पई इह मोई ते तुसीं लूस्यां विच सिंजदे,
बिजली कूब गई थरोरी हुण कम्बापुंज है छाई।

---

८ थरथराते पाषाण

किम्वदन्ती है कि मार्तण्ड*को भस्मसात् हुए एक युग बीत गया। थरथराते पाषाणोंने भी यही बताया। और एक-एक शिला रो-रोकर कहने लगी—

हाय कला-कौशल! हाय देश!! तेरी यह दशा! तू छिलका उतरे फलकी भाँति टुकड़ोंमें बिखर गया!

---

९. कलाईकी कम्पन

तुम सपनेमें आए। मैंने तुम्हें आलिंगन-बद्ध कर लिया, किन्तु तुम तो अदृश्य थे। मेरी पकड़में नहीं आए। मेरी कलाई काँपती रह गई।

मैंने बरबस चरणोंपर माथा टेक दिया किन्तु माथा बिना स्पर्शके ही रह गया। तुम ऊँचे थे, मैं नीचा। मेरे वशकी बात नहीं थी।

मैं पल्ला पकड़नेके लिए भागा। बिजलीकी लहरोंकी-सी गतिसे पल्ला उड़ गया। जाते-जाते वह अपना स्पर्श देता गया।

निष्प्राण मिट्टीमें प्राण फूँककर तुम रोम रोममें ऐसे समा गए, जैसे बिजली कौंध जानेसे चकाचौंध छा जाए।

---

* कश्मीरके एक बौद्धकालीन सूर्य-मन्दिरका भग्नावशेष जो कभी संगीत-विद्याका एक प्रसिद्ध केन्द्र था।

१० ग़रम, अमल

सिर कचकौल बना हत्थ सीता,
पड़ियाँ द्वारे फिरिया,
दर दर दे टुक मग मग पाए,
तुन तुम के इह भरिया, ॥१॥

भरिया बेल माफ़रिया मैं सां,
खासा पम्मिल होया,—
ठिके म पर जिमीं ते मेरा
चम्मा हो ही टुरिया ॥२॥

इक दिन इह कचकौल लै गया,
मुर्शिद मूहरे धरिया
जूठ जूठकर जस उस्टाया,
खासी सारा करिया ॥३॥

मल मलके फिर धोता इसनू,
मैल इल्लम दी लाही,
देखो, इह कचकौल लिश्किया ।
कोवस मांग फिर सिड़िया ॥४॥

———

१० विद्या और अमल

सिरको प्याला बनाकर मैं विद्याके द्वारपर भिखारी बनकर घूमने लगा। घर घरसे भीख माँगकर मैंने इसे ठूँस-ठूँसकर भर लिया ॥१॥

प्यालेको भरा देखकर समझा, बस मैं ज्ञानी हो गया। मेरे पैर धरा पर कहाँ टिकते? मैं ऊँचा हो, एड़ियाँ उठाए चलने लगा ॥२॥

एक दिन यह प्याला मैंने अपने मुरशिदके आगे जा रखा। उसने जूठन कहकर इसको उलटा,१ और खाली कर दिया ॥३॥

फिर इसे मल-मलकर धोया। विद्याका सारा मैल उतार दिया। अब इस प्यालेको देखो, कमलकी भाँति फिर खिल उठा है ॥४॥

२२ गुलाब दा फुल तोड़न वाले नूं

डाली नालों तोड़ न सानू,
असां हुट्ट 'महक' दी काई ।

रस गाहक जे सुंघे आके,
खाली कोय न जाई ।

तू जो इक तोड़के लै गयों,
इक आसो रह जासी—

मोह दी पलक झलक दा मेला,
रूप महक सभ जाई ।

---

११ गुलाबका फूल तोड़नेवालेको

तू डालसे मुझे मत तोड़ ! मैंने गन्धकी दूकान सजा रखी है। सूँघनेवाले लाख ग्राहक भी आ जाएँ, तो भी मैं किसीको खाली न जाने दूँगा। तोड़ लेनेपर मैं तेरे लिए ही रह जाऊँगा। वह भी कुछ क्षणोंकी बात होगी। मेरा रूप-लावण्य एवं सुगन्ध सभी पलक मारते ही उड़ जाएँगे।

---

१२. पिंजरे पया पंछी

[पिंजरे की समाप्ति करनवाले नूं]

आसम सड़ा हया खुसी विच,
मासे 'पिंजरा सुहणा'—॥१॥

'विच आ जावें फिर में पुच्छां,
किसा है मन मुहणा ?
'पर तों हीन धरा वे कैदी !
मो मूर्ख दिल करदे !
उड्डण हारे पछी नूं इह,
सुहणा है जिन्द-सुहणा।
आसम नूं रंग सोहणा सगा,
मिट्ठी सगो वाणी—
वाह वाह कबर गुणा दी पाई ॥२॥

छह के जाली साथी।
पकड़ पिंजरे पाये विछोड़िया,
साक स्नेहियां मासों,
मट्ठ पवे इह कबर सुहाडी
सेह इस 'मारो' साणी।

---

१२. पिंजरेका पंछी

[पिंजरेकी सराहना करनेवालेके प्रति]

खुली वायुमें साँस लेते हुए जालिम कहता है– पिंजरा कितना सुन्दर है। ॥१॥

' कठोर हृदय रखनेवाले मूर्ख ! भीतर आनेपर मैं तुझसे पूछूँ कि पिंजरा कितना मोहक है ! मैं पंख विहीन पंछी इस धराका बन्दी बन गया हूँ। यह मुक्त वातावरणमें उड़ान भरनेवालोंके प्राणोंका भक्षक है। सुन्दर रंग, मधुर वाणी देख-सुनकर तूने छिपकर जाल फैलाया। मेरे गुणोंकी तूने अच्छी कद्र की ॥२॥

सभी रिश्ते-नाते छुड़वाकर मुझे पिंजरेका बन्दी बना दिया। तेरी यह गुण-ग्राहकता भाड़में जाय। तेरे संग मैं कैसे मित्रताकी गाँठ बाँधूं !" ॥३॥

१२ ज़ीनत बेगम

सोहणे सोहणे महल बसावे
वेखण आइयो सहियो !
इक तों इक चढ़दे नकशे,
वेख वेख रज रहियो,
पर इक नकशा गुप्त इल्हा विच,
हर मुकते विच लिखिया,
पढ़े बाझ उस नकशा मटसमें,
सहियो न मुड़ आइयो !
ए नकशे – नक्काश रंगीला,
जबसी बांका पांका,
मासो मास गंव तों कोई,
गुप्त नकशा इक बांका।

यह सी नकश विछोड़ा सहियो
अती निपुढ़ियां पढ़िया
काश ! कहे इह नकश मेरा उह,
जासम वी पढ़ लवां।

---

१४. अंकित देह

ऐ सखि ! मेरे सुन्दर महलोंको देखने आना । इनकी एकसे एक बढ़कर आकृतिको देख-देखकर तुम्हारा मन नहीं भरेगा । किन्तु इनके प्रत्येक चित्रमें एक गोपनीय आकृति भी है जिसे बिना पढ़े न लौट जाना । अब तककाश इन आकृतियोंमें प्राण डाल रहा था जो कोई अद्भुत-शक्ति एक गोपनीय आकृतिको उभाड़ जाती थी ।

सखियो, अभागिन मने जब उस पढ़ा सा वह विछोह की एक आकृति थी । काश ! कभी वह आत्मिक भी मरी इस आकृतिको पढ़ पाता !

२४. अम्बर दी टेक

सिक सिक रो रो ढूंढ ढूंढ के
मजनूं उम्र गवाई।
पर मेघर न लाबी लस्सी,
धा उस पास न आई।
अन्त हारके यह गया मजनूं,
लैली लैली जपदा।
सिक लैली विच लग गई अम्बर,
अम्बर लैली आई। ।।१।।

लैली दी हुण सिक लाय के,
मजनूं लम्बी आई।
मैं लली, लली पई कूके,
मजनूं सियाण ना काई।
मैं लैली, म लैली कूके,
मजनूं लस्सी होया।
आपे प्रीतम बण गिया प्रेमी,
टेक वी अम्बर पाई। ।।२।।

---

२४ भीतरकी टेक

मजनूँने सिसकियाँ भरते रो-रोकर सारी आयु बिता दी। किन्तु लैला न पिघली और न उसके पास चलकर आई। अन्तमें हताश होकर मजनूँ लैलाका नाम लेता मौन होकर बैठ गया। लैलामें वह इतना तन्मय हो गया कि उसके भीतर लैला आ गई ॥१॥

लैला इस आकर्षणवश मजनूँका ढूँढती आई। उसकी मैं लैला मैं लैला की पुकारसे भी मजनूँ उसे पहचान न पाया।

मजनूँ लैलाका रूप हो गया। जब भीतरकी टेक मिली तो प्रियतम स्वयं ही प्रेमिका बन गया ॥२॥

---

१५. पवामा हाला वल ते हुंगियाँ शामां

प्रश्न —

सम होई परछावें छुप गये
किऊँ इकछावल तूं वारी ?
में सरोव कर रही उवें ही
ते दुरमों वी नहीं हारी,
सैसामो ते पधी मासी
हुन सब आराम विच आये,
सहम स्यावसा छा रिहा सारे
ते कुदरत ठिक गई सारी ।

परवाने दा उत्तर —

सीने सिच बिरहा ने साधी
उह कर आराम नहीं बहिंदे ।
निहुं वासे नैणा को मींदर
उह दिन रात पये बहिंदे ।
इको मगन लगी लई जाँवी
है टोर मनस्त उग्हा वी,
पससों उरे मुकाम न कोई,
सो वास पये मिप्त रहिंदे ।

१५.*इच्छा बलका झरना और गहरी सन्ध्या

प्रश्न —

साँझ उतर आई है। साये छिप गए हैं। पर इच्छा बल तू क्यों बहा चला जा रहा है? न तो तू चुप हो रहा है और न चलते-चलते थक ही रहा है। तैमानी पंछी और माली सब विश्राम करने चले गये हैं। चारों ओर स्तब्धता छा गई है तथा समस्त प्रकृति शान्त हो गई है।

झरनेका उत्तर —

जिनके सीनेमें प्रगति पथपर बढ़नेकी बलवती इच्छा होती है वे आरामसे नहीं बैठते हैं। प्रेम पीने नयनोंमें निद्रा नहीं आती है, वे तो सदैव आँसू बहाते हैं। एक लगन उन्हें चलाए जाती है। उनकी गति अनन्त होती है। मिलनसे पहले उनका कोई पड़ाव नहीं होता। वे सदा चलते ही रहते हैं।

---

* कश्मीरका एक झरना।

१५. परवाना हच्छा वल ते चूंगियाँ वालां

प्रश्न —

सम होई परछावें छुप गये
किउं इच्छावस तूं जारी ?
मैं सरोद कर रह्यो पर्वे ही
ते दुरलों दी महों हारी,
सैलानी ते पंछी मासी
हुन सब आराम विच आये,
सहम स्यावला छा रिहा सारे
ते कुदरत टिक गई सारी ।

परवाने दा उत्तर —

सीने विच जिन्हां ने लागी
वह कर आराम नहीं बहिंदे ।
जिन्हें वाले नैणा दी भींबर
उह बिन रत्त पये बहिंदे ।
इको लगन लग्गी लई बांदी
है डोर अनन्त जन्हा दी,
मसलों उरे मुकाम न कोई,
सो चाल पये नित्त रहिंदे ।

१५.* इरस्ता वलका झरना और गहरी सन्ध्या

प्रश्न —

साँझ ढल आई है। साये छिप गए हैं। पर इरस्ता वल तू क्यों यहा बहा जा रहा है? न तो तू चुप हो रहा है और न चलते-चलते थक ही रहा है। सैलानी पंछी और माली सब विश्राम करने चले गये हैं। चारों ओर स्तब्धता छा गई है तथा समस्त प्रकृति शान्त हो गई है।

झरनेका उत्तर —

जिनके सीनेमें प्रगति पथपर बढ़नेकी बलवती इच्छा रहती है, वे आरामसे नहीं बैठते हैं। प्रेम भीने नयनोंमें निद्रा नहीं आती है, वे तो सदैव आँसू बहाते हैं। एक लगन उन्हें चलाए रखती है। उनकी गति अनन्त होती है। निस्सन्देह उनका कोई पड़ाव नहीं होता। वे सदा चलते ही रहते हैं।

---

* लेबनानका एक झरना।

१६ अमर रस

सोहणे रूप सुराही प्याला,
बेस खुशी खुश होई ।
खुश होई खुश बेस सजण दा,
बेस सुराही रोई ।
रोंदी बेस सजण हस आखे—
कौड़ी शराब न भाया ।
अमृत इह सुराही भरिया,
पिये ते मोवे मोई ।
बे इक बूंद सुराहियों सानूं,
सोच समुन्दर मोड़े ।
वे खुशियाँ वे चाड़ मना ते,
आस संदेसे तोड़े ।
रंग सुहावे ते नौरंगी,
पींघ धुक्के आनन्दी ।
आण हुलारे अमर खुशां दे,
मुड़न ना ऐसा जोड़े ।

——

१६ अमर रस

प्रेमीके हाथमें सुराही और प्याला देखकर दुखियारी हृदयसे चहक उठी। वह प्रेमीका मुख देखकर तो प्रफुल्ल हो गई, किन्तु सुराहीको देखकर रो पड़ी। उसे रोते हुए देखकर प्रेमीने हँसकर कहा—

"मैं कड़वी शराब नहीं लाया हूँ। इस सुराहीमें वह अमृत भरा है जो मुर्दोंमें भी प्राण फूँक दे।'

मुझ इस सुराहीमेंसे एक बूँद पिला दे ताकि मैं आशा-निराशाको भूलकर बे-खुदीके लोकमें पहुँच जाऊँ। वहाँ मैं सुन्दर सुहाने रंगोंवाले झूलेमें बैठकर आनन्दमग्न हो जाऊँ और उसकी हिलोर मुझे सदैवके लिए अमर सुखमें लीन कर दे।

---

२७ कशमीर तों वियोगी

सुहाणीयाँ तों जद विछुड़न लगिये,
दिल दिल-गीरी जावे।
पर तेथों दुरवियाँ कशमीरे,
सानूं ना दुख आवे।
मटक झिलोरा छोह तेरी दा,
जो क्हु साडी कीता।
ओहे वाली मस्ती दे रिहा,
नाम मास पिया जावे।।

---

२८ पुष्कर

पुष्कर तेरा खुला नजारा
वेख वेख दिल ठरिया
सुथा, बड्डा, सोहणा सुथ्या,
ताजा, हरिया भरिया,
सुन्दरता तर रही तें उत्ते
सुख उडारियाँ लवी
मिसन फलम कुँआरी रगत
रस अनन्त दा भरिया।

---

१७ कश्मीरसे विदाई

प्रेमियोंका विग्राह हृदयको उदासीका आवरण ओढ़ा देता है, किन्तु ऐ कश्मीर! तुमसे विदा होते समय मुझे कोई पीड़ा नहीं हो रही। तेरे स्पर्शकी एक हिलोर मेरी आत्मामें समा गई है हर्ष-विभोर हुआ मैं उस अनुभूतिको अपने संग लिए जा रहा हूँ।

---

१८ पुष्कर

*पुष्कर! तेरा सुन्दर दृश्य देख कर हृदय शीतल हो गया है। तू खुला, विशाल सुन्दर पवित्र ताजा और हरा भरा है।

तू सौन्दर्यसे परिपूर्ण है। तुझमें स्वतन्त्रता विचरण कर रही है। तुझमें अदृश्य छवि एवं अछूते रंगोंकी धारा प्रवाहित हो रही है।

---

* कश्मीरका एक झरना।

१९. चाँदनी

मुहयाँ मार्सों लिक्के लिक्के
चाँदनी दे पैर सहिमो !
केर्सों बोम्रा मुहयाँ उत्ते
आल आल टिकदे ॥१॥

ऐत्थों छालां मार टप
पैण चिट्टे पत्थरां ते
उत्थों कुद हेठ सड
पाणी उत्ते बिगदे ॥२॥

लहिरां दे उत्ते पत्ते
तिल मिल खेडदे भी
पोले पोले रख रख
घुमक घुमक ठिकदे ॥३॥

नाच करन पाणी उत्ते
लासां मारन पौण विच
चाँदनी दे नैण अम्बर
घन्न बन्न तकदे ॥४॥

सब भरिया प्यार नाल
तके यस चांदनो दे
तकदा ए सारा, सहिमो
मसही जो हो रिहा ॥५॥

चानण चन्द बेबंदा दे
चानण ए साथ सारा
चानणी दे चानणे नू
वेख रोस के रिहा ॥६॥

१९. चाँदनी

हे सखी ! चाँदनीकी सूईसे भी छोटे पैर देवदारके नुकीले पत्तोंपर आकर पड़ते हैं। ॥१॥

यहाँसे छलाँग मारकर श्वेत प्रस्तर पर आते हैं और वहाँसे कूद कर नीचे यमुनाके जलपर गिरते हैं। ॥२॥

लहरोंपर झिल-मिल करते हुए क्रीड़ा करते हैं और धीरे धीरे ठुमक-ठुमककर कदम रखते हैं। ॥३॥

चन्द्रमाकी किरणें पानीके ऊपर इस तरहसे छिटक रही हैं मानो वे पानीके ऊपर नाचती हुई कूद रहीं हों। चाँदनीकी आँखें चन्द्रमाकी ओर देख रही हैं। ॥४॥

स्नेहसे परिपूर्ण चाँद चाँदनीकी ओर निहार रहा है और उसे देखते-देखते वह स्वयं आँख ही बन गया है। ॥५॥

चन्द्रमा ज्योत्स्ना प्रदान करता रहता है। यद्यपि वह स्वयं प्रकाशमय है किन्तु फिर भी चाँदनीका आलोक देखकर मोहित हो रहा है। ॥६॥

चानणे दे रूप प्यार
भेजदा ए चांदनी नूं
लगातार प्यार—मींह
　　　चन्न हेठ दे रिहा ॥७॥

चांदनी मा मोम दी ह
हेठां किसे प्यार होर
ध्यान चन्न विच विच
　　　उताहां मन लै रिहा ॥८॥

झुग्गी मढी गालियां ते
खेतां बनां जंगलां ते
शहरां पिंडां सममा ते
　　　चांदनी है पै रही ॥९॥

राजियां अमीरां ते गरीबां
पापी पुंनियां दे
सारियां दे द्वारियां ते
　　　चानणा ह दे रही ॥१०॥

ध्यापो सारे विसदो हे
खबत किसे विच नाहीं
ध्यान सारा चन्न विच
　　　चन्द लिव पै रही ॥११॥

चन्द प्यारे चानणी नूं
चानणी खिचीवे चन्द
बस मात लोच स्वाद
　　　अरणी दा ल रही ॥१२॥

चन्द्र प्रकाशरूपी प्यार चाँदनीको देता है एवं सतत भू पर प्यारकी वर्षा करता है। ॥७॥

नीचे चाँदनी अन्य किसीके स्नेहके वशीभूत नहीं होती है। उसका ध्यान चन्द्रमाकी ओर आकर्षित रहता है। ॥८॥

वह, सरिता मार्गों खेत, वनों, जंगलों, नगरों तथा ग्रामोंपर चाँदनी छिटक रही है। ॥९॥

राजाओं धनिकों, निर्धनों पापियों तथा धार्मिकों—इन सबके द्वारोंपर प्रकाश दे रही है। ॥१०॥

ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि चाँदनी सबमें व्याप्त है, परन्तु किसीमें लीन नहीं है। इसका ध्यान चन्द्रमामें लगा है और उसी ओर खिंची जा रही है। ॥११॥

शशि चाँदनीको प्यार करता है तथा चाँदनी चाँदको आकर्षित करती है एवं वह धरापर छिटककर भी साधिका-सा आनन्द अनुभव कर रही है। ॥१२॥

---

२० जोंदा आप हीं खोलनों दे दयार !

म बकरियां चार री,
दुपहरां वे सूरज सों थकी,
चिनार रो छावें पत्थर शिला ते बठी मूं,
मेरे राजन ! तेरे सिपाहीने
तेरा हुक्म सुनाया —
'रात, हां अधी रात
आ महलां लड़का दरवाजा
पातशाही महल दा
पिछवाड़े पासे दा दरवाजा।'
खोलेगा आप आ राजा
अपने किवाड़ ।
हां दसवीए तुसवीए ।
आ गया ए राजा मूं,
तेरा मीरां मपेटिया रूप ।   ॥१॥

*   *   *

कपड़ो ते ओदरदी
कदे अमग्रा करदी
कदे हासो समझदी,
में तुर ही पई अधी रात ।
    तुरदी ते ठहरदी,
कदे ठुमकदी, कदे थिरकदी,
आ पहुची हां तेरे दवार,
राजा जी ! खोहलो किवाड़ !   ॥२॥

१० उनके द्वार मैं स्वयं जाता हूँ !

मेरे राजन ! बकरियाँ चराती दोपहरीके धूपसे क्लान्त चिनारकी छायामें शिलापर बैठी मुझको तेरे सिपाहीने आज्ञा सुनाई कि आधी रातको मेरे महलके पिछवाड़ेका द्वार खटखटाना । राजा स्वयं अपने किवाड़ खोल देगा। गुदड़ीमें छिपा तेरा रूप राजाकी आँखोंमें समा गया है । ॥१॥

काँपती-सिहरती कभी राजाके सन्देशको हँसी-मजाक समझती मैं आधी रातको चल दी। ठुमकती-थिरकती तेरे द्वार आ गई हूँ। राजाजी, किवाड़ खोलो । ॥२॥

मेरे मागां मे आंदे ने मघ
आ जुड़े ने चिच अकाश,
छा गया हनेरा घुफ़ेर,
आई ठोहकरां खांदी मैं हेर
भयदी मासा दा सड़ घुट घुट
आ पहुँची हां तेरे दवार,
राजा जी ! खोहलो किवाड़ ! ॥३॥

* * *

लह पईयां नी बूंदां हुम, हाय !
मुस्स गई ए पुरे दी पौण,
मेरे राजा !
गड़कदी ए बिजली अकाश,
भास गज्जदी ए बदलां दी फौज ।
घुथिआंदी ए अक्खां नूं लिशक
पर हिला खोंदी ए बद किवाड़,
तेरे, राजा जी ! बद किवाड़,
खोल अपने बंद किवाड़ ! ॥४॥

* * *

किसदे भी बद किवाड़ ?
मैं तां मर गई सां तेरे दवार
तेरे वेखदे बद किवाड़,
साडे मोहां दी हाय सुणाड़ ! ॥५॥

* * *

आकाशमें मेरे भाग्यरूपी मेघ छा गए हैं। चारों ओर अँधेरा घिर आया है। आशाके पल्लेको भींच भींचकर मैं ठोकरें खाती तेरे द्वारपर आ गई हूँ। राजाजी, किवाड़ खोलो! ॥३॥

मेरे राजन! बूँदा-बाँदी हो रही है। पुरवाई चलने लगी है। आकाशमें बिजली चमक रही है। बादल गरज रहे हैं। उसकी चमक आँखोंको चकाचौंध करती हुई बन्द किवाड़ दिखा जाती है। राजाजी, तेरे किवाड़ बन्द हैं! अपने बन्द किवाड़ खोलो!! ॥४॥

कहाँ हैं बन्द किवाड़? वर्षाकी बौछार खाकर तेरे बन्द किवाड़ देखकर, मैं तो तेरे द्वारपर ही मर गई थी। ॥५॥

इह तां मेरी है आपणी छम—
कुल्ली करवां दी कानियां दी छम,
विच बैठे ने मेरे महाराज—
राजा की राजा महाराज !
किथे गए हो आ मेरी करवां दी छम ?
किथे गई हां आ देख बंद किवाड़ ? ||६||

* * *

लैके मोती दे न बिबकार
कीते राजे ने बुल्ल मोधाड़—
"जिहड़े करदे ने मैनू प्यार
"मोह जांदे ने मेरे दवार
' किवें मिल गए मोहनां दीदार।
"पर करदा मैं जिन्हां नू प्यार,
"जीदा मार हां मोह मां दे दवार—
"दवार मोहनां दा मेरा दवार। ||७||

———

यह तो मेरी अपनी झोपड़ी है! भीतर मेरे महाराज राजाओंके राजा बैठे हैं। मेरी तिनकोंकी झोपड़ीमें कैसे पहुँच गए? तेरे बन्द किवाड़ देखकर मैं कैसे आ गई? ॥६॥

मेरे राजनने अपने होंठ खोले— जो मुझे प्रेम करते हैं वही मेरे द्वार पहुँचते हैं, ताकि उन्हें मेरा दीदार हो जाए। पर मैं जिन्हें प्रेम करता हूँ स्वयं उनके द्वारपर जाता हूँ। उनका द्वार, मेरा द्वार है। ॥७॥

———

२१ निक्की गोद विच

अज्ज मूर दे तड़के

तारों से रही सी सवेर अंगड़ाईयां
पहु फुटाले दी गोद विच,
इक खिड़े गुलाब दी गोद विच
तुसीं ओस रहे समो मेरे साईंयां !
किंज, हां किंज ! आ गए सभो,
ओस निक्की गोद विच ?
मेरे ऐडे वड्डे विशाल साईंयां !

———

२१ छोटी गोदमें

आज जब उषाकी गोदमें ज्योतिर्मय प्रात अँगड़ाई ले रहा था, तब एक खिले हुए स्निग्ध गुलाबकी गोदमें तुम खेल रहे थे। तुम इतने विशाल मेरे प्रियतम्! कैसे? हाँ, कैसे आ गए उस छोटी-सी गोदमें!

---

२१ निकी गोद विच

अज्ज नूर दे तड़के

जदों सै रही सी सवेर अंगड़ाईयां
पहु फुटाले दी गोद विच,
इक खिड़े गुलाब दी गोद विच
तुसीं खेल रहे सज्जो मेरे साँईयां !
खिड़, हां खिड़ ! आ गए सज्जो,
ओस निकी गोद विच ?
मेरे ऐड वडे विशाल साँईयां !

———

६१ छोटी गोदमें

आज जब उषाकी गोदमें ज्योतिर्मय प्रात अँगड़ाई ले रहा था तब एक खिले हुए स्निग्ध गुलाबकी गोदमें तुम खेल रहे थे। तुम इतने विशाल मेरे प्रियतम! कैसे? हाँ कैसे आ गए उस छोटी-सी गोदमें!

२२ मेरा संदेश

अवे काले कबूतर !
'बीजो आयां मूं' बोर !
माइऐ मंजिलां कट
ते बसिजां मूं चीर ।
समाइऐं कोई संदेश
जो बन्हावे मैं घोर ?
मीसी पानी ए गल,
न चिट्ठी संदेश ।
मगे हैसां उदास,
हार होईयां दिलगीर ।
हां, मैं समझी हां बीर !
स्याइएं न, समा माईऐं संदेश । ॥१॥

* * *

मुड़िया जाना तू बीर
मेरे धोला दे देस
लैजा, मेरा संदेश । ॥२॥

चिट्ठी बन्ह दियां तेरे गल—
"उछल उछलके नीर
नैण बण गए फुहार
उछल उछलके नीर ॥" ॥३॥

२२ मेरा सन्देश

ओ काले कबूतर ! तेरा शुभागमन !! तू जाने कितनी मुश्किलें और मंजिलें लाँघकर आया है। क्या कोई धैर्य बँधानेवाला सन्देश लाया है? तेरे गलेमें नीला धागा है पर न कोई पाती है और न सन्देश। पहले ही मैं उदास थी, अब और भी अधीर हो गई हूँ। हाँ, अब समझ गई। कुछ लाया नहीं वल्कि सन्देश लेने आया है ॥१॥

मेरे प्रियके देशको लौटकर जानेवाले ! मेरा सन्देश ले जा ॥२॥

तेरे गलेमें पाती बाँध देती हूँ—

'पानी छलका-छलकाकर आँखें फव्वारा बन गई हैं पानी छलका-छलकाकर !" ॥३॥

२३ कित्ये हो ?

कित्ये हो ?
कोसे हो,
कूवे नहीं ?
कूवे हो पर कन्नीं सव सुणेंवी नहीं ॥१॥

कित्ये हो ?
कोसे हो,
विसवे नहीं ?
विसवे हो पर सूरत नम वसेंवी नहीं ॥२॥

कित्ये हो ?
कोसे हो,
मिसवे नहीं ?
मिसवे हो पर तन मूं देह लपटेंवी नहीं ॥३॥

कित्ये हो ? मरे सुहणे साईं !
कोसे हो मेरे प्यारे साईं !
हमी कोसे पर तड़प मिलन की
समसेंवियाँ
समसेंवो नहीं ॥४॥

३३ कहाँ हो ?

कहाँ हो ? समीप हो, बोलते क्यों नहीं ? बोलते हो पर कान आवाज नहीं सुनते ॥१॥

कहाँ हो ? समीप हो दिखाई नहीं देते ? दिखाई देते हो पर आँखोंमें सूरत समाती नहीं है ॥२॥

कहाँ हो ? समीप हो, मिलते नहीं ? मिलते हो पर शरीरसे देह लिपटती नहीं है ॥३॥

कहाँ हो, मेरे प्रियतम ! समीप हो मेरे प्रिय !! समीप हो, पर मिलनेकी तड़प सम्हाले नहीं सम्हलती ॥४॥

२४ मेरे चप्पे लग रहे हन

मेरे चप्पे लग रहे हन
    पाणियां दी छाती ते मेरी किश्ती तुरी जा रही है,
    हौले हौले, सहजे सहजे, छमके छमके।

दिन ढल गया
    चप्पे लग रहे हन, किश्ती तुरी जा रही है।
                हां, किस्थे नूं ?
शामां पै गईयां, किश्ती चल रही है,
    मेरे चप्पियां दे पाणी नाल लगण दी आवाज
    कह रही है—
    चल चल चल चल।
हनेरा हो गया।

    दूर दूर किते किते दीवे टिमकदे हन।
    चप्पे लग रहे हन किश्ती चल रही है,
    अगे चली जा रही है
        दाता ! किस्थे नूं ?

    तारे चढ़ आए, पाणियां विच उतर आए,
        हवा ठमक गई,
    तारे पाणियां नाल खेलदे हन, मेरी किश्ती दी
    चाल तों बेपरवाह हन।
    मेरे चप्पे लग रहे हन, किश्ती चल रही है
        दाता ! किस्थे नूं ?

७४ मेरे चप्पू लग रहे हैं

मेरे चप्पू* लग रहे हैं। पानीकी छाती पर मेरी नाव धीरे धीरे मन्थर गतिसे बहती हुई चली जा रही है।

दिन ढल गया। चप्पू लग रहे हैं नाव चली जा रही है। हाँ कहाँ पर? सन्ध्या ढल गई, नाव चल रही है। मेरे चप्पू पानीकी छातीके संग लगकर आवाज देते हैं—चल, चल, चल, चल। अन्धकार घिर आया है।

दूर कहीं दीपक टिमटिमाते हैं। चप्पू लग रहे हैं। नाव चल रही है अभी चली जा रही है। प्रियतम कहाँ?

तारे निकल आए। पानीमें उतर आए। वायु चलने लगी है। तारे पानीके संग खेलते हैं। मेरी नावकी चालसे बेपरवाह हैं। मेरे चप्पू लग रहे हैं। नाव चल रही है। प्रियतम कहाँ?

---

* चप्पू—नावका वह डाँड जो पतवारका भी काम देता है।

२४ मेरे चप्पे लग रहे हन

मेरे चप्पे लग रहे हन
    पाणियां की छाती ते मेरी किश्ती तुरी जा रही है,
    हौले हौले, सहजे सहजे, छमके छमके।

दिन ढल गया
    चप्पे लग रहे हन, किश्ती टुरी जा रही है।
        हां, किश्ते कु ?
शामां पै गईयां, किश्ती चल रही ह,
    मेरे चप्पियां दे पाणी नाल लगण दी आवाज
    कह रही है—
    चल चल चल चल।
हनेरा हो गया।

    दूर दूर किते किते दीवे टिमकदे हन।
    चप्पे लग रहे हन किश्ती चल रही है,
    मजे चली जा रही है
        दाता! किश्ते कु ?

    तारे चढ़ आए, चाणियां विच उतर आए,
        हवा ठमक पई,
    तारे पाणियां नाल खेलदे हन, मेरी किश्ती दी
    चाल तों बेपरवाह हन।
    मेरे चप्पे लग रहे हन किश्ती चल रही है,
        दाता! किश्ते कु ?

२४ मेरे चप्पू लग रहे हैं

मेरे चप्पू* लग रहे हैं। पानीकी छाती पर मेरी नाव धीरे धीरे स्थिर गतिसे बहती हुई चली जा रही है।

दिन ढल गया। चप्पू लग रहे हैं, नाव चली जा रही है। हाँ कहाँ पर? सन्ध्या ढल गई, नाव चल रही है। मेरे चप्पू पानीकी छातीके लग लगकर आवाज देते हैं—चल, चल चल चल। अन्धकार घिर आया है।

दूर कहीं दीपक टिमटिमाते हैं। चप्पू लग रहे हैं। नाव चल रही है अभी चली जा रही है। प्रियतम कहाँ?

तारे निकल आए। पानीमें उतर आए। वायु चलने लगी है। तारे पानीके संग खसते हैं। मेरी नावकी चालसे बेपरवाह हैं। मेरे चप्पू लग रहे हैं। नाव चल रही है। प्रियतम कहाँ?

---

* चप्पू—नावका वह डाँड़ जो पतवारका भी काम देता है।

चन्न नहीं, सूरज नहीं, मेरी बेड़ी बिच दीवा नहीं।
पाणीयां दी छाती ते कोई राह् सड़क पगडण्डी
नहीं,
मेरे निताणे चप्प हन।
पाणी बेड़ी तिलकाई जांदा है,

क्यों क्यों किश्ती ठुरदी है,
टिमकदे चानणे दूर हो दूर जापदे हन।
पाणी ठंडे हन, महरदार हन, हवा जिसी है,
छलियां पीडो हैं, पर हुण ठरद हन,
दाता! असे किस्मे कु?

रात खिसक पई तारे सटक गए,
वड्डी तिलकदी आ रही है
पाणी चप्पियां दा मूंह चुमद हन, ते आखदे हन,
चल, चल, चल।
दस्स दाता! किस्ये कु?

चाँद नहीं, सूर्य नहीं। मेरी नावमें दीपक भी नहीं है। पानीकी छातीपर कोई रास्ता सड़क पगडण्डी नहीं है। मर चप्पू कमजोर हैं। पानी नावको फिसलाए जा रहा है।

जैसे-जैसे नाव चलती है टिमटिमाता आलोक दूर ही दूर लगता है। थप खाता हुआ पानी शीतल है। वायु तीखी है, लिपटती जा रही है। अब हाथ ठिठुरते हैं। प्रियतम, अभी कहाँ?

रात ढल गई। तारे सटक गए। नाव फिसलती जा रही है। पानी चप्पूओंका चुम्बन लेता हुआ कहता है—चल चल चल चल। बता तो प्रियतम कहाँ?

———

९५. गंगाराम

विच जंगल इक उजाड़ वड़ी,
इक तोता बैठा रोंदा है।
डर उठदा, तकदा टपदा है,
तक ,तक के फाव्हा हुदा है ॥१॥

ना सहिम कद छहि बैंदा है,
बस भास करे दुर पैंदा है।
चक टग करे अख मोटे है,
पक सम्भ कवे फड़कदा है ॥२॥

हर्के डावां डोलक हुदे नूं,
मुल मह मे भास सताया है।
पर दुख हरता इस दुखिये दा,
कई सैण सार ना आया है ॥३॥

सी पिपल इक उदार वड़ा,
दुज दूर सुहावा महर रिहा।
इक डार उडदी तोतियां दी,
इस ते आ बैठ अराम लिया ॥४॥

सुम सुमण डाल हिलदोयां ते,
टुक गोल्हां खाणा मचिस्त बणे,
सुण हो हो चहि चहि शोर करन,
फिर बार चुफेरे मगर सड़े ॥५॥

२५. गंगाराम*

पिंजराधाम नगरमें बैठा एक तोता रो रहा है। भयसे वह चौंक उठता है। उछलता है। इधर-उधर देख-देखकर बेचैन होता है ॥१॥

ठिठुरता-सिकुड़ता कभी बैठ जाता है। कभी आशाका पल्ला पकड़े रहता है। टाँग उठाकर कभी आँख मींच लेता है और थककर कभी पंख फड़फड़ाता है ॥२॥

ऐसी घबराहटमें भूख-प्यास सताने लगती है किन्तु इस दुखीका दुख मिटानेवाला कोई नहीं आया ॥३॥

एक विशाल पीपलका पेड़ कुछ ही दूरीपर खड़ा लहरा रहा था। उड़ान भरती तोतोंकी एक पंक्ति उसपर विश्राम करनेके लिए आकर बैठ गई ॥४॥

बेपरवाह तोते जब पिप्पली (पीपलके फल) खाते हैं तो पेड़की डाल डाल झूम जाती है। चहचहाते, शोर करते वे चारों ओर निगाह दौड़ाते हैं ॥५॥

---

*पालतू तोतेको गंगाराम या मियाँ मिट्ठू कहा जाता है। भाई वीरचंदने इस कवितामें एक पराधीन तोतेके माध्यमसे स्वाधीनताकी महिमा गाई है।

इक तोते डिठा दूर पड़ी,
कुई चीर असाडा विलक रिहा।
विच दुक्ख तसीहे पिया किसे,
सभ्भ हड्डियां ते हुं डिसक रिहा ॥६॥

इह मार उडारी पास गिया
आ कहिंदा तूं क्यों सिसक रिहा?
ह दुखिया क्यों दुखियार बड़ा
विच सहिम उदासी मुसक रिहा? ॥७॥

आ मार उडारी नाल मेरे,
लै चलां उपर बृछ चड़े।
मत ऐथों बिल्ली कुत्ता आ,
निज पेट भरन नूं चक लड़े ॥८॥

सुण तक कह यक बृध जरा
'की मैं आ उये सकदा हां?
हुई दुकम वाला मास नहीं
न सोच सोचणो सकदा हां।' ॥९॥

'सिह, तोता कहिंदा मिड़क जरा,
'तूं उड़ परों नूं मार भरा।'
पर मारे पर उड़ सके ना,
हो गगाराम सवार रिहा ॥१०॥

ए हाल अमोला तोते ने
नहीं अगे मुणिया डिठा सी,
उड गिया भरायां वसण नू
इह मर्दा मुमावस बिटठा सी ॥११॥

एक तोतेने देखा कुछ दूरीपर उनका कोई भाई बिलख रहा है। किसी मञ्झमा पीटामें जकड़ा पत्र होते हुए भी पत्र विहीन लग रहा है ।।६।।

तोता एक उड़ान भरकर उसके पास जाकर बोला— तू क्यों सुबक रहा है ? इतना दुखी क्यों है ? उदासी और भयसे कैसे काँप रहा है ? ।।७।।

चल मेरे साथ उड़ चल। मैं तुम्हें उस पड़के ऊपर ले चलूँगा। कहीं ऐसा न हो कि यहाँसे कोई बिल्ली-कुत्ता अपनी उदर-पूर्तिके लिए तुम्हें उठा ले जाए। ।।८।।

अशक्त तोतने उस पेड़की ओर देखकर कहा— क्या मैं वहाँ जा सकता हूँ ? कोई उठानेवाला साथ नहीं है। यही सोचकर हिचकिचा जाता हूँ ।।९।।

तोतेने डाँटकर कहा— छि तू पत्र तो मार!" पत्र फड़फड़ाने पर भी गंगाराम उड़ न सका। लाचार होकर बैठ गया ।।१०।।

ऐसी अनोखी बात तोतेने न पहले सुनी थी और न देखी थी। वह अपने साथियोंको यह समाचार दिखाने बतानेके लिए पेड़पर गया ।।११।।

इक तोते डिठा दूर खड़ी,
कुई वीर भसावा बिलख रिहा ।
विच दुख तसीह पिया किसे,
सम्भ दुखियां ते हैं बिलक रिहा ॥६॥

इह मार उडारी पास गिया
ना कहिंदा तूं क्यों सिसक रिहा ?
हैं दुखिया क्यों दुखियार बड़ा
विच सहिम उदासी दुसक रिहा ? ॥७॥

भा मार उडारी मास मेरे,
लै धरती उपर पुछ बड़े ।
मत ऐथों बिल्ली कुत्ता भा,
निज पट मरम मूं चक चड़े ॥८॥

सुण तक कहे बल दुख जरा
'की म जा उधे सकदा हां ?
कुई धुकम वाला नाल नहीं
मैं सोच सोचणो सकदा हां । ॥९॥

'हाह, तोता कहिंदा झिड़क जरा,
'तूं उड़ परी मूं मार मरा ।
पर मारे पर उड़ सके ना,
हो मंगाराम लचार रिहा ॥१०॥

ए हाल मणोका तोते मे
भाहीं मगे गुणिया डिठा सी,
उड गिया भराबां वसण मूं
इह भर्वा मुमावस चिट्टा सी ॥११॥

एक तोतन देखा कुछ दूरीपर उनका कोई भाई बिलख रहा है। किसी यन्त्रणा पीडामें जकड़ा पच होते हुए भी पच विहीन रुम रहा है ॥६॥

तोता एक उड़ान भरकर उसके पास जाकर बोला— तू क्यों सुवक रहा है ? इतना दुखी क्यों है ? उदासी और भयसे कैसे काँप रहा है ? ॥७॥

चल मेरे साथ उड़ चल। मैं तुम्हें उस पेड़के ऊपर ले चलूँगा। कहीं ऐसा न हो कि यहाँसे कोई बिल्ली-कुत्ता अपनी उदर-पूर्तिके लिए तुम्हें उठा ले जाए। ॥८॥

भयाक्त तोतेने उस पेड़की ओर देखकर कहा— क्या मैं वहाँ जा सकता हूँ ? कोई उठानेवाला साम नहीं है। यही सोचकर हिचकिचा जाता हूँ ॥९॥

तोतेने डाँटकर कहा— 'छि तू पख तो मार!" पंख फड़फड़ाने पर भी गंगाराम उड़ न सका। लाचार होकर बैठ गया ॥१०॥

एसी अनोखी बात तोतने न पहले सुनी थी और न देखी थी। वह अपन साथियोंको यह मजेदार किस्सा बतानके लिए पेड़पर गया ॥११॥

या सारा हाल सुणाया सु,
सुण कार हिठाहां आई गई।
तक सब ने आखिया 'तोता हे ?'
'की सिर इस भाय बलाय पई ? ॥१२॥

इक कहिंदा साथिया बे!
'तूं क्यों ए धाम बणाई ए ?
'विच सहिम घुटिया जाक रिहा
'क्यों उडण बाग भुलाई है ? ॥१३॥

तो कंहिंदा गंगा राम 'भई!
'मं वतनों विछुड़ बेहाल बड़ा,
'मुझ मोह ने मार मुकाया हां
'दुख सहिम पिया सिर आण कड़ा। ॥१४॥

इक तोता कंहिंदा 'दस भई!
'कुझ हाल वतन दा असाँ नूं ?
'विच विरहों जिस दे रोंदा ह ?
'विच पहुंचण चाहें जिसदे तू! ॥१५॥

सुण आखे गंगाराम 'सुणो!
म बन-कोन दा वासी हां।
सुख मौज बहारां मोग यड़े,
दिन रात रहां विच हासी तां। ॥१६॥

इक तोते दूजी बात करे
'इस थां त रहणा ठीक नहीं,
उड चलो उताहां पिपल ते
गल आखो उथे चल सही।' ॥१७॥

उसने आकर सारी बात बताई। सुनकर तोतोंकी कतार पेड़से नीचे उतर आई। सबने देखकर कहा— हे ता ताता इसके सिरपर क्या बला आ पड़ी है?" ॥१२॥

एक बोला—"सुन ओ भाई! तूने अपना यह क्या हाल बना रखा है! भयभीत-सा क्यों दुबका जा रहा है। उड़नेकी रीति तू क्यों भूल गया" ॥१३॥

गगाराम रोकर कहने लगा— अपन देशसे बिछुड़कर मैं बहुत बेहाल हूँ। भूख-प्यासने मुझे निढाल बना दिया है। दु ख और भयसे मरा जा रहा हूँ।' ॥१४॥

एक तोता बोला—"हाँ भाई! तू अपन देशका कुछ हाल तो कह? तू कहाँ पहुँचना चाहता है और किसके विछोहमें रो रहा है? ॥१५॥

सुनकर गगाराम बोला— सुनो म दव-लोकका वासी हूँ। रात-दिन मौज बहारकी दुनियामें विचरता था ॥१६॥

एक तोतेने बीचमें ही बात टोक दी आकर कहा— यह स्थान ठीक नहीं है। उड़कर ऊपर पीपलपर चल बैठें। वहीं चलकर बातें करेंगे।' ॥१७॥

पर बालम भुखा पेट बुरा
बिन मुझके करे अराम नहीं ।
सौ रोंवे धोंवे गणू ने कर
उगस मिगस का मोहल सई ॥२४॥

हुण पुष्प हास विलासत बा
जह पमू माल स्याव कहे —
"मैं बेषतियाँ विच वसदां सां
जित्थे जोवन सदा अखिम्त रहे ।
मैं वसणे नूं इक महल ।सिगा,
जो कोहे माल बणाया सी ।
इस अन्दर बैठया निर्भय सां,
कुई वैरी निकट न आया सी ।
कुई भन्न न इस नूं सकदा सी,
फिर पोम मसायक वगदी सी ।
ते चूरी मिठठी मिलदी सी,
जो बहुस स्यादी लगदी सी ।
कई मेवे मिरचाँ मिलदे सन
कई भोजन सोहणे मादे सी ।
कई प्यार लाड नित हुंदे सी,
कई झोके रोत सुमादे सी ।
दिन रात मौज ही रहिंदी सी
कुई मुशक्कत करे ना पदी सी ।
नहीं चिन्ता भारे रहिंदी सी
न बोझ उहमा सिर बहदी सी" ॥२५॥

किन्तु आखिर भूखा पेट बुरा है। इसे बिना फुलका दिए आराम कहाँ है। सो रो-धाकर गगू पिप्पली निगम हो गया ॥२४॥

अब विलायतका हाल पूछनेपर गगू बच्चे के साथ कहन लगा—'देवतामोंमें मरा बसरा था, यहाँ जीवन चिन्ताओंसे मुक्त रहता है। मेरे निवासके लिए एक महल था जो लोहेसे बना था। उसके अन्दर मैं निर्भीक बैठा रहता था। न कोई शत्रु समीप आ सकता था और न कोई उसे ताड़ सकता था। फिर वायु भी अजीब लगती थी और बहुत स्वादिष्ट मीठा मलीदा मिलता था कई प्रकार फल भी मिलते थे। कितने प्रकारके सुन्दर भोजन आते थे। नित्य लाड़ प्यार मिलता था। लोग गात सुनाते थे। रात-दिन मौज थी। कभी कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती थी और किसी चिन्ताने भी कभी नहीं सताया था" ॥२५॥

इह कहके गंगा राम तुरीं,
'झट पधी पट पट पड़दे सी।
'सा चूरी' मुड़ मुड़ कहँदे सी,
'कई टपे पाबों पकड़े सी ॥२६॥

इह भयानक बोली डहिल भरी,
सुण कम्बी सारी डार खड़ा।
कुझ समझ सके ना की होया,
इह की धफड़ा है सबज चिड़ा ॥२७॥

जद चुप होई तद सोच पई,
सब फिकर डुबावे पके मे।
नहीं समझ पिया जो उस रिहा,
फिर पुछां पुछ पुछ मपे मे।
कुझ सियाणे तोते जड़ गये,
इक सिमल दा सी ढूंघ बड़ा।
इक यहुत पुराण तोते दा,
सोहू इस दो विच सी इक पुरा।
जा सबने सीस निवाया ए,
ते सारा हाल सुणाया ए।
फिर पुछिया—'बाबा दस असीं

यह कहकर गंगाराम 'रट पंछी पट पट'* रटने लगता था। बार-बार कहता था— 'खा मसीदा' और कई टोटके सुनाने लग जाता था ॥२६॥

यह भयंकर बोली सुनकर सभी तोतोंकी कँपकँपी छूट गई। उनकी समझमें कुछ भी नहीं आया कि हुरा तोता क्या बक रहा है? ॥२७॥

प्रामोसी छा जानेपर सावत चिन्ता करते सब थक गए। उसने जो कुछ कहा किसीकी समझमें नहीं आया। फिर जब पूछ-पूछकर थक गए, तो कुछ समझदार तोते उड़ गए। सेमलका एक बहुत बड़ा पेड़ था। उसमें एक बूढ़े तोतेने अपना काटर बना रखा था। सब जाकर नतमस्तक हुए और सारी बातें बताकर पूछा— 'हमें बता बाबा कुछ तरी समझमें आया है।" ॥२८॥

---

* पिंजरेमें गंगारामको सबसे पहले यही सिखाया जाता है—
"रटपट पंछी चतुर सुजान। सबका दाता श्री भगवान। पढ़ गंगाराम!"

उस बुड्डे कई जमाने वर्ते,
दुनियाँ दे विच विछ्ठे से ।
कई हास सुणे ते पुधे से,
कई वाबे पिघले चिठ्ठे से ॥
'हुं कहिंदा लोड़ाँ निकलया सी,
ते उस पिपले माइया सी ।
सक उपरे आये तोते मूं
इक कूचा ध्यान जमाया सी ॥
मठ साड गया रंग पिस्का ह,
ते हिस्सण जुस्सन ढिल्ला है ।
मल बबक बबक के तकवा है,
जियों सिर ते हुर दम बिस्ता है ॥
बुस डिसके मत्थे जोत नहीं,
बिच छम्बा लिषवाँ ताण नहीं ।
निज ताकत दी कुई शान नहीं,
कल चढ़दी दी कुई आन नहीं ॥२९॥

उस बावे बुड्डे दाक पिया,
है बब पिया या बास रिहा ।
नहीं देव-लोक दे पास गिया,
सं ऐंये उमे सास रिहा ।
फिर माल पियार दे बोल पिया,
'इस यक्षू बरखुरदार बड़े !
'त देव-लोक तो बिछुड़ करों,
'दे सीते सिर ते दुख कड़े? ॥३०॥

उस बूढ़ेने जमानेके सारे उतार चढ़ाव देखे थे। सारी दुनियाँ छान रखी थी। 'हूँ' कहकर वह अपनी खोहसे निकला और उड़कर पीपलके पेड़पर आ गया। उस पराये-से लगनेवाले तोतेपर एक गहरी दृष्टि डालकर वह उसी समय भाँप गया—रंग पीला है। अंगोंमें ढीलापन आ गया है। आँखोंमें भय-सा समाया हुआ है, जैसे सिरपर कोई बिल्ली हो। होंठ कुम्हला गए हैं। माथा ज्योतिहीन है। डैनोंमें कोई तनाव नहीं। स्वयकी भक्तिमें न तो विश्वास है न कोई स्वाभिमानका चिह्न शेष है ॥२९॥

उस बूढ़े तोतेको सन्देह हुआ—या तो यह बन्दी रहा है या दास वन-लोकका वासी नहीं है। इसकी साँस तो देखो कैसी फूल रही है। फिर विनम्रतासे उसने पूछा— 'प्रिय! बता तो तूने देव-लोकस बिछुड़कर ये मुसीबतें कबसे मोल ले लीं?' ॥३०॥

रो गेंगू मावे 'सैर करम
दूर देव-वास मन मावे सी,
चुक मैंनू माल सिपावे सी,
फिर सेवों सब कुमावे सी।
उड़ खेड सिरेंदे घुहम मरे,
ते टपदे मचदे बोड रहे,
सब मनूं फिरदे निकल गये,
मुड उस याहूं नहीं परत महे ॥३१॥

'उड़ गये किसे बल होरस नूं,
पट पट के अँखीं वेहदा सी,
फिर दुर दुर मां पां लबदा सी,
में हारिया भास करेंदा सी। ॥३२॥

हू —मुड़ा कहिंदा— दस वई!
तूं देव-लोक नूं जाणा हू?
कि रहने जगत बाग मसी
बन बन दा मेवा खाणा हूं?' ॥३३॥

हाँ, देव-लोक नूं जाणा हू।'
कहे गगू राह बताइया जे
इस, डायां बोल बिलायत तो
म देस बिसे अपड़ाया जे। ॥३४॥

को उथे मिसवा लोपा हू?
को फल बदाम दा सोना हू?
फो उथे स्वादस पीण वहे
को बसदी गंगा गोमा हूं? ॥३५॥

गंगाराम रोकर कहने लगा—'आज मच्छ सैर करनेके लिए आए, तो मुझे भी उठाकर साथ मत आए। वे सब खसमें लीन हो गए। खेलते-खेलते वे जाने मुझे छोड़कर किधर निकल गए। फिर उस जगह लौटकर नहीं आए ॥३१॥

वे किसी दूसरी ओर निकल गए। मैं आँखें फाड़ फाड़कर इधर-उधर उन्हें देखता रहा। ॥३२॥

हूँ —बूढ़े सातेन फिर कहा—'तू हमें बता देव-लोकको जानकी इच्छा है या जंगलमें हमारी भाँति रहकर भाँति भाँतिके फल खाकर जीना चाहता है? ॥३३॥

गगाराम बोला—'मैं देव-लोकको जाऊँगा। मुझ रास्ता बता दो। इस अस्थिर बिलायतस मुझ मरे दग पहुँचा दा। ॥३४॥

'वहाँ क्या गरीका गोला मिलता है? क्या वहाँ बादामके फलका स्रोत बहता है? वहाँ क्या भीमी वायु बहती है या गंगा-गोमती बहती है?' ॥३५॥

इह कहके बुड्ढे तोते ने
चोफेरे नजर घुमाई सी,
बस हार आपणी 'ध्यान करो'
इक ऐस मस तकाई सी ।।२६।।

सुण गॅपू कहिंदा आखो की'
कुज योस्मिया किहा मा जांदा ए,
रस माबे बेलिये मसीं जे,
बिन डिट्ठे समस मा आंदा ए ।।२७।।

उस बुड्ढे तोते 'ठीक' किहा ।
नहीं डिट्ठे वरगा सुणिया हो,
जो हुई आके वरतिया मा
की मास सियाणा पुणिया हो
पर तर की सोच बड़ी दी है
इक सच झूठ दा तक्कड़ ह
कर वसदो निभय सुणिया वे
की सच अचे की मक्कड़ है ?
मे पुछी जो कुज पियारे जी !
दे उत्तर मसां मिहास करो
इस जगल वासी पशुआं नूं
कुझ मस विभी सुहास करो ।।२८।।

जो मंदर सुन्दर मिसिया सी
बिच जिसदे मुरिये वसदे से
की पन्द कुतरळे होया सी
या उस नूं इक दो रसते से ?' ।।२९।।

यह कहकर बूढ़े तोतेने अपने चारों ओर निगाह दौड़ाई। तोतोंकी कतारकी ओर संकेत किया कि जरा ध्यान करो ।।३६।।

गंगाराम बोला—'क्या कहूँ। कहने सुननेकी बात नहीं। अपनी आँखों देखकर ही पता चलता है। बिना देखे कुछ समझमें नहीं आता। ।।३७।।

बूढ़ा तोता बोला—'ठीक है देखने-सुननेमें अन्तर है। जो अपने साथ नहीं बीती, सुनी बातका क्या मूल्य है? फिर भी सोच-विचार बड़ी चीज है। एक सच-झूठका तराजू भी है जो सुनी बातका निर्णय देनेकी क्षमता रखता है। मैं जो कुछ पूछूँ उसका उत्तर देकर निहाल करना। हम जंगलके जीव कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे।' ।।३८।।

'हाँ, तो जो निवासके लिए मन्दिर मिला था और जिसमें रहकर तुम सुखी थे—क्या वह चारों तरफसे बन्द था या उसके दो रास्ते थे?' ।।३९।।

इह कहूके बुड्ढे तोते ने,
चोफेरे नजर घुमाई ही,
मन डार आपणी 'ध्यान करो'
इक ऐस मज तकाई सी ।।१६।।

सुण गेंगू कहिंदा 'आखो की'
कुज चोतिया जिहा ना जांदा ए,
रस आवे बेसिये मर्सी जे,
बिन डिट्ठे समझ ना आंदा ए ।।१७।।

उस बुड्ढे तोते 'ठीक किहा ।
नहीं डिठ्ठे बरगा सुणिया हो,
जो हुड्डी आके बरतिया ना
की नाल सियाणां पुणिया हो
पर तब वो सोच बड़ी दी है
इक सच झूठ दा तक्कड़ है
पर बसदो निभय सुणियां दे,
जो सच जग्गे दी पक्कड़ है ?
म पुछां जो कुज पियारे जी !
दे उत्तर असां निहाल करो
इस जगल बासी पंछुआं नूं
कुज मन दियो खुशहाल करो ।।१८।।

जो मेवर सुन्दर मिलिया सी
बिच जिसदे सुखिये बसदे से
की मन्न भुतरके होया सी
या उस नूं इक बो रसने मे ?' ....

यह कहकर बूढ़े तोतेने अपने चारों ओर निगाह दौड़ाई। तोतोंकी कतारकी ओर संकेत किया कि जरा ध्यान करो ।।३६।।

मगाराम बोला— क्या कहूँ। कहने-सुननेकी बात नहीं। अपनी आँखों देखकर ही पता चलता है। बिना देखे, कुछ समझमें नहीं आता। ।।३७।।

बूढ़ा तोता बोला—'ठीक है देखने-सुननेमें अन्तर है। जो अपने साथ नहीं बीती सुनी बातका क्या मूल्य है? फिर भी सोच-विचार बड़ी चीज है। एक सच-झूठका तराजू भी है जो सुनी बातका निर्णय देनेकी क्षमता रखता है। मैं जो कुछ पूछूं उसका उत्तर देकर निहाल करना। हम जंगलके बीच कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे। ।।३८।।

'हाँ, तो जो निवासके लिए मन्दिर मिला था और जिसमें रहकर तुम सुखी थे—क्या वह चारों तरफसे बन्द था या उसके दो रास्ते थे?' ।।३९।।

गेंगू— इक रसता उमदा हैगा सी,
पर बन्द सदा उह रैंदा सी।
मत कोई मनूं जा जावे,
इस गल्ल तों सुखिया सैंदा सी।
सन रसते चार चुफेरे की,
धुप पौंम सुली आ जांदी सी।
डर मैंनू रता ना रैंदा सी,
कुई आन बला न खांदी सी ॥४०॥

मुन्ना तोता—पर दसीं ताकों मदर दी
बस किस दे खोलण मारण सी?
जे बस मा तेरे रखो सी
तां इस दा कहु की कारण सी?
जे जिदड़ा चाहे निकलण नूं
कोई तेरी मासी ममदा सी?
जां बसा मरजी दूये सी
तू बिच पिया सिर धुमदा सी?
की तूं दरवाजे दसदा हैं
की उस तों बाहर जांदा स?
जां विचे रहके उहना तों
दर्शन ही देंदा — स्दा सें? ॥४१॥

गगाराम—सी देवतियां दे चस सदा,
चस मेरे रतन माड़ा सी।
उह बन्दी नां, इक रासी दा,
न हासे तमदा वाड़ा सी।
उह रसते मौज बहारां दे
दा चामण रखादा देंदे सन।
पर मनूं मन्दरे रपदे सन,
उह दासे रस करेंदे सन ॥४२॥

गंगाराम—उसका एक ही रास्ता था जो हमेशा बन्द रहता था। मुझे कोई खा न जाए, इस बातसे निश्चिन्त होकर मैं सोता था। रास्ते तो चारों तरफ और भी थे। खुली धूप आती थी। मुझे किसी प्रकारका भय नहीं रहता था। न कोई बला ही मुझे पकड़ सकती थी ॥४०॥

-

बूढ़ा तोता—यह तो बता मन्दिरकी खिड़की खोलने और बन्द करनेका अधिकार किसके पास था? तेरे वशकी अगर बात नहीं थी तो इसका क्या कारण था? यदि तेरा दिल बाहर निकलनेको चाहता था तो क्या तेरी बात कोई मानता था? या फिर तू परायोंके आधीन सिर खुजलाता ही रह जाता था? जो द्वार तूने बताये क्या उनमेंसे कभी बाहर भी आता था, या भीतर रहकर ही दर्शन देता-लेता था? ॥४१॥

गंगाराम—सब कुछ देवताओंके वशमें था। मेरे वशकी कोई बात नहीं थी। मेरे गिर्द एक तगड़ा बाड़ा था। वे मौज-बहारके रास्ते वायु प्रकाश और आनन्द देते थे। पर मुझे भीतर ही रखते थे। मेरे मालिक मेरी रक्षा करते थे। ॥४२॥

बुड्ढा तोता—जो अमृत खाणे मिलदे से
उह देंदे तैनूं आपे सी
या मुंह मंगिया जो देंदे सी
जो तैनूं लगदे भापे सी ॥४३॥

गंगाराम—जो भावे उहना माँ पिया नूं
मिश्र वालों वांगू देंदे सी
मैं मंगण कोलों संगदा सां
जो चाहुण आप करेंदे सी ॥४४॥

बुड्ढा तोता—जे बाल कदे कोई उन्हां दा
त भास खेडदा हसदा सी,
ते तैथों चक मलोवां सी
उह जा माँ पिया नूं दसदा सी।
तद तनूं सोटी पैंदी सी
ते चूरी बन्द रहौंदी सी?
जा गल म गउलो आंदी सी
कुई माफ़ल सिरे म आंदी सी? ॥४५॥

गंगाराम—जे मं अपराध कमांदा सां
तद कीते दा फल पांदा सां।
पर म बोया बण रहिंदा सां,
बस लगदे नहीं दुखांदा सां।
इह कहिंदयां झटपट पंछी नों,
फिर गगू बोलो पांदा ए।
सुण तोता धौण चढांदा ए,
ते अगली गल चलांदा ए ॥४६॥

बूढ़ा तोता—जो अमृत-रूपी भोजन तुझे मिलते थे, क्या वे स्वयं देते थे, या माँगनेपर मिलते थे ? जो तेरे माँ-बापके समान थे। ।।४३।।

गंगाराम—उन माँ-बापकी जो इच्छा होती थी, अपने बालकोंकी भाँति मुझे खानेको मिल जाता था। माँगनसे मैं लजाता था जो देना होता वे स्वयं ही दे देते थे। ।।४४।।

बूढ़ा तोता—यदि अपन संग खेलते उनके किसी बालकके घू काट बैठता था और वह जाकर माँ-बापको बता देता था, तो तुझे पीटा जाता और मसीदा बन्द कर दिया जाता था ? या फिर बात टाल दी जाती थी। और तेरे सिर कोई मुसीबत नहीं आती थी ? ।।४५।।

गंगाराम—यदि मैं अपराध कर बैठता था तो उस क्रियेका फल भी मिल जाता था। पर मेरा जहाँ तक बस चलता मैं किसीका दिल नहीं दुखाता था। यह कहकर गंगाराम स्पष्ट पंछी की बोली बोलने लग जाता है। सुनकर तोता गर्दन खड़ी कर लेता है और बात आगे बढ़ाता है। ।।४६।।

बुड्ढा तोता—इह बोली सिख किथ बोले तूं
इह देव लोक दी बाणी है?
की रमज दी बसी तैनूं है
या कठ करन दी ठाणी है?
जे समझे तां समझावीं तूं
की इस दा सिट्टा जाता ऐ?
की मेल समझ तू सीते हन
की वित्तो वध पछाता ए? ॥४७॥

गंगाराम—म समझ नहीं मैं की बोलां,
जो बोलण सोई नकल करां।
उह रीझण एन्हा नकलां ते,
म खुशी करन दी नकल करां ॥४८॥

इह सुणके तोता हस पिया,
सिर फेर दार नूं कहिंदा है।
'कुझ समझिया बरखुरदारो जे,
किस थां ए पियारा रहिंदा ह?
नहीं देव-लोक दा वासी है,
नहीं देवां रसते पाया है।
उस मानुख दुरदे धरती ने,
दिथ बन्दी कर रखाया है।' ॥४९॥

बूढ़ा तोता—जो बोली अब तू बोल रहा है क्या यह देव-लोककी वाणी है ? इसका कोई रहस्य-तुम्हें बताया गया है या रटी-रटाई है ? यदि तू समझता है तो हमें भी बता कि इसका क्या अर्थ हुआ ? क्या सब रहस्य तूने जान लिये हैं, और जिसकी पहचान करनी थी, कर चुका है ? ॥४७॥

गंगाराम—मुझ स्वयं को पता नहीं कि मैं क्या बोलता हूँ। जो वे बोलते हैं, उसकी नकल करना मुझे आता है। वे मेरी नकलपर प्रसन्न होते हैं। मेरा काम उन्हें प्रसन्न रखना है ॥४८॥

यह सुनकर बूढ़ा तोता हँस दिया। फिर तोतोंकी कतारको सम्बोधित करते हुए कहने लगा—'कुछ समझमें आया चिरजीवियो ! यह अपना भाई कहाँ रहता है ? यह किसी देव-लोकका वासी नहीं। न यह देवताओंके मार्गका ही अनुयायी है। यह तो धरतीके मनुष्यों द्वारा बन्दी बनाकर रखा गया एक तोता है ! ॥४९॥

हो अचरज सारे तरचक गये,
पये बिट बिट सारे तकदे हैं।
बस बावे मुड़ बोहदे हैं,
बस गगू तकदे भकदे हैं।
पा गेंगू पूरी बोहदे हं,
फिर हेठां ममर दुड़ांदे ह।
मत किदरे हूंड करेंदा जे
कोई वतनी तुरिया आवे है।
हुण मुड़े तोंते आह भरी,
फिर मन भकाम्न उठांदा है।
जो अजी बदे मा रोंदी सी
वो हंमू भरके सोंदा है।
मा रमजे जम्मे नैन सदे,
प रवे रसीले रग भरे।
बिच गड भणाशा भवब भरे,
उह माया ऐं भरवास करे ॥१०॥

हे सब तों उच्चे उडुण वाले,
भरतां तो बी परे परे।
उच्चे बसे बिना मासणे,
बिन सम्भां तर गगन रहे।
पौण भकाम्न, धरती तसि पाणी
हर थां तो विस-भीड़ मुणो,
मुण भरवास पगु दी बाते।

आश्चर्य-चकित हो सभी चौंके। एक दूसरेकी ओर देखने लगे। कभी बूढ़े तोतेको, कभी गंगारामको देखते हुए झेंपते हैं। गंगू माथेपर तेवर डालकर इधर-उधर निगाह दौड़ाता है कि कहीं उसकी खोज-खबर लेनेवाला कोई देश-वासी चला आ रहा, दिखाई पड़ जाए। अब बूढ़ा तोता एक निःश्वास लेकर अपनी आँखें आकाशकी ओर उठाता है। जो आँखें कभी रोई नहीं थीं उसमेंसे आँसुओंकी दो बूँदें ढुलक पड़ती हैं। वे रसिया आँखें एकटक आकाशकी ओर लगी प्रार्थनामें जुड़ जाती हैं ॥५०॥

ऐ सबसे ऊँचे! देव-लोकसे भी परे बसनेवाले!! हम बिना घोंसले, पंख विहीन आकाशके वासी हैं। पवन पानी, धरती और आकाशकी तुम पीड़ा पहचानते हो। मुझ पशुकी भी प्रार्थना सुनो प्रियतम! अपनी कृपा-दृष्टिसे हमें कभी वञ्चित न करना।

सानूं रस सुर्तेतर बाते,
बंदी साथो दूर रहे
परतन्तर ना कदे करावीं,
सुख दा सदा हाजर रहे।
मुंह तक्रिये ना कदे कैद दा,
कदे गुलामी आवे नां,
दास बना न खिदमत पावीं,
साडी सुख सुहावीं नां।
दूये दे वस पाके सानूं,
मन दी मौज गुवावीं ना।
आजादी हक तेरा दित्ता
सब नूं दान कराइ तूं।
बूठ प्रभु ए बात न मुस्से,
दिसी वई रहाई तूं।
मरजी हेठ किसे दी मरजी
धवरे मास न लगे कदी।
जंगल यासा येशक देवीं,
माड़ी महल न शहर वई।
तन नूं बजण लुगी मिले पर,
मुख वदे ना तस लईं।
बेगम साडी कोम जिमारी,
हक हक बिन पेट भरे।
पेट भरे नहि ऊना रह जये,
सुख ना साडी कदे मरे।

सदा हमें स्वतन्त्र रखना। बन्दीखानेसे हम कोसों दूर रहें। पराधीनता कभी न दिखाना। खुले आकाशमें हम सदा अपने पंख फड़फड़ाते रहें। कभी किसीके दास न बनें और न ही हमें कोई पिंजरेका बंदी बनाए। दास बनकर कहीं हमारी स्वाधीनता न छिन जाए। परायेके वशमें आकर हम अपने मनकी मौज न खो दें। स्वाधीनताका जो अधिकार हमें दिया है, वह सबको देना। हमारी इच्छाओंको कोई जबरदस्ती कुचल न सके। न कोई बाधा पहुँचाए। न हमें कोई ठग सके। हम जंगलके वासी भले हमें महलों नगरोंकी इच्छा नहीं। शरीरको ढाँकनेके लिए खुशी काफी है, पर हमारी स्वतन्त्रता बनी रहे। भले ही हम सारा दिन चोगा* चुग चुगकर अपना पेट भरें, या खाली रह जाएँ। हमारी आजादी न छीनना!

फलो फल फिरावीं सानूं,
डालों डाल उडावीं सानूं।
घोके घोक टपाके सानू,
कौड़े फली रिझावीं सानूं।
बन परबत मल बनीं पहाड़ीं,
रेत थलों पौ देवीं तूं।
सुख गु विसा हुक समस मूं,
देवे फली म सेवीं तूं।
माण मान दिल शान असाडी
तेरे साथ रखावीं तूं।
प्यार आपने बाफ, प्रभु तूं
दूजी फेर मा पावीं तू।
वैर करन ते आसथ रासो,
दर्शन देव करावीं मी।
पाण पिजरे देण चूरियां
ऐसे सली मिसावीं मी।
लम्ब असाडे पैर असाडे
दिल साडे गु रोक करे।
धरमो ऐसे असां न मेली
डोर पाप हुप बाम फड़े।
तुसे रखदियां मौज फिरैदियां
बाग कि विस्सा आप पये।
मदद बिहूने रासी बासों
दुल सारो चाहि माश हुये।
जद तब इक मसां दों बीबे
तुल विच उस मुखास बहे ॥२१॥

हम पेड़-पेड़, डाल-डालपर फुदकते रहें। ध्रेक*के बहुमें फल खाकर ही हम जी लेंगे। वन पर्वत मरुस्थल—कहींपर भी रह लेंगे। आजादीका जो अधिकार हम सबको दिया है, वह सदा बना रहे। तेरे सहारे हमारी आन-बान कायम रहे। ऐ भगवन्! तुम्हारे प्रेमकी कैदके बिना हमें कोई दूसरी कैद न देखनी पड़े। जो बन्दी बनाकर देवताओंके दर्शन कराते हैं, पिंजरेमें डालकर मलीदका प्रलोभन देते हैं, ऐसे दामबीर हमें नहीं चाहिए। ऐसे धर्मात्मा-पुरुषोंकी संगतिसे हम दूर ही भले हैं जो हमारे पंख पर और हृदयको गतिविहीन बना दें और गलेमें रस्सी डालकर हाथमें लगाम पकड़ लें। किसी *रखवालेकी सहायताके बगैर खुले आकाशकी उड़ान भरते मौजसे घूमते भले ही बिल्ली या बाजका शिकार बन जाएँ। हमारे सारे कुलका नाश* हो जाए। जब तक हममेंसे एक भी जीवित है स्वतन्त्रताकी साँस लेता रहे ॥५१॥

* ध्रेक के पेड़ केवल पञ्जाबके ही कुछ मध्यवर्ती जिलोंमें पाये जाते हैं। अन्य भारतीयोंके लिए यह एक अपरिचित नाम है।

इक अरदास होर है साईंयां ।
मेहर करीं दे कन्न मुन्नी
पशु मती हां पशु रखावीं
बेशक सबमे समन गुणीं ।
उह ना मजम असानूं देवीं
उह तहजीब दिखावीं नां ।
उह सभ्यता दूर रहावीं,
विद्या उह सिखावीं नां ।
जास पाप ते घड्म पिआरे
देव पाप सिखलावे जो
खम्ब तोड़ कर बोट बहावे
दुखिया भजो पावे जो
लोक गुलाम बनाय बहाले
सुरतां कतल करावे जो ।
तेरे रचे सुतंतर बन्दे
परदे ताण सुटावे जो ।
पुल हरन दी जाच असानूं
साईंयां करदे सिपाई नां ।
पशु असां नें चाट रखीं
मानुख पदे यमाई नां ।
चाहे जंगली चाहे पशु रख
जाने चाहे यमाई नां ।
पुल पयग दी मजम ना देवीं
पुल पोहण जाच सिखाईं नां ।
'पुल रखण' दी ग रत देवीं
पुल पुहणों दाम दिखावीं नां ।

एक प्रार्थना और है प्रियतम ! हम पशु हैं। पशु ही रहें, गुणहीन ही भले। हम उस शिक्षाके गुण कभी ग्रहण न करें, उस सभ्यतासे दूर रहें जो जाल फैलाकर पिंजरेका बन्दी बनाना सिखाती है। पञ्च नोचकर जो दूसरोंकी स्वतन्त्रता छीनती है। लोगोंको पराधीन बनाकर बैठा देती है। तेरे पैदा किए स्वतन्त्र मनुष्योंको जो पराये वशमें कर देती है। किसीकी स्वतन्त्रताको छीनना हम कभी न सीखें भले ही जंगली कहलाएँ, मनुष्य कभी न बन सकें। स्वतन्त्रता बेचने की बुद्धि नहीं चाहिए। स्वतन्त्रता छीनने' के ढंग न सीखें। स्वतन्त्र रहनेकी आन और स्वतन्त्रताकी लाज आँखोंमें बनी रहे।

खुल कइये खूल बात कराइये,
खुल बे बात बनावीं तूं।
मच मरे ना कदे मसाडा,
गम कदे बिस खावे ना।
खुशी रहे मम मरी मसाडे
कम कदे सिर मावे ना।
पैरत ठरन खून ना देवे,
भगव रगां बिच रसे नी।
मुजा साडियां ताण काम रहे
भख उचेरो तक्के जो।
मोढे तने ताण विच सिधे,
गरदन आकड़ भरी रहे।
चोर रहे हिक साडी भरिमा
डर दा धीम ना कदे रहे।।५२।।

खुले हाथों हम स्वतन्त्रता माँगें, दास कभी न बनें। हमारे भीतरकी चिनगारी सदा सुलगती रहे। कभी साहस न छोड़ें। सदा प्रफुल्ल मन रहें कभी कोई संकट न आए। खूनका ज्वार सदा गरमाए रखें। नसोंमें ज्ञान भरी रहे। बाहु तानकर हम आँख उठाकर देख सकें। कन्धोंका तनाव कभी ढीला न हो। गर्दन सीधी तनी रहे। हमारे सीने और भुजाओंमें शक्ति बनी रहे। भयभीत हो हम कभी गर्दन न झुकाएँ। ॥१२॥

इनमें शृंगारके साथों साथ एवं शान्त रसका सुन्दर परिपाक हुआ है। इनकी रचनाओंमें शब्दका माधुर्य एवं भावोंका अजस्र प्रवाह खूब मिलता है।

श्री जंध्याल पापय्या शास्त्री बड़े ही भावुक हैं। करुण श्री के उपनाम से ये कविता करते हैं। उदय श्री करुण श्री विजय श्री आदि इनके काव्य ग्रन्थ हैं। इनकी रचनाओंमें भाव-पूर्ण शब्द अपने आप निर्झरकी धाराके समान बहते हैं। प्राचीन शैलीमें नवीन भावोंको लेकर चलनेवाली इनकी कविता बड़ी ही सरल और सरस हुई है। इस कालके अन्य प्रसिद्ध कवि श्री पन्तुल रामनारायण शास्त्री, नरसिंह शास्त्री, मार्यनि सुब्बाराव, अडिवि बापिराजु आदि हैं।

तृतीय उत्थान-काल

जिस प्रकार हिन्दी साहित्यमें छायावादकी प्रतिक्रियाके रूपमें तत्कालीन परिस्थितियोंके कारण प्रगतिवादका आविर्भाव हुआ वैसे ही तेलगु साहित्यमें भी हुआ। भाव कविताकी प्रतिक्रियामें यथार्थवादी कविताका आविर्भाव हुआ।

द्वितीय महायुद्धके आरम्भ होनेसे पूर्व सारे देशमें दरिद्रताका ताण्डव नृत्य हो रहा था। बेकारी बढ़ रही थी। समाजके मध्यम वर्गमें आर्थिक विषमताके कारण अशान्ति पैदा हुई। ब्रिटिश शासनका शोषण रूप आर्थिक दमन ज्वालाकी तरह धधक रहा था। सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ था। स्वतन्त्रताकी भावनाके साथ गान्धीजीका आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। विदेशी शासनका दमन और उत्पीड़न चरम सीमापर था।

इन परिस्थितियोंमें कविका हृदय विकल हो गया। उसने देखा कि कल्पना के संसारमें विचरण करनेका अब समय नहीं है। कल्पनाके आकाशमें कितना ही ऊँचा उड़ें पर रहना तो धरतीपर ही है। अतः यथार्थवादी कवि कल्पनाके आकाशसे नीचे उतरकर आर्थिक विषमतामें पिसनेवाले समाजका चित्रण करने लगे।

साम्यवादी विचारधाराका इस यथार्थवादी कवितापर विशेष प्रभाव पड़ा। इस आर्थिक साम्यवादको प्रोत्साहन देनेके लिए नवसाहित्य परिषद की स्थापना हुई जो आगे चलकर अभ्युदय रचयितल संघमु में विलीन हो गई।

इस धाराके प्रसिद्ध कवि श्री श्रीरंगम् श्रीनिवासराव हैं। आप श्री-श्री के नामसे प्रख्यात हैं। नई कविताके विषयमें आपके ये विचार हैं —

क्योंकि शब्दोंको
तोड़ मोड़ लिख डाले।
कहे कोई अरे मूर्ख है क्या यह?
तो कहें, यह कविता है।

इस छन्द रहित कविताके लिए आप नई वस्तुओंका आधार मानते हैं —

सिन्दूर रक्त चन्दन
बन्धूक सन्ध्या राग

बाल-हत-हिरण्य रसत,
कापालिक-नयन-ज्वाला
कलकत्ता-कालिका-जिह्वा
चाहिए नव कविताके लिए।

फिर यह कविता कैसे होगी? इसका प्रभाव क्या होगा? वे कहते हैं —

हिलनेवाली, हिलानेवाली
बरसनेवाली बरसानेवाली
गहरी नींदको हटानेवाली
पूर्ण जीवन प्रदान करनेवाली
है नव कविता।

यह कवि केवल क्रान्तिसे ही सन्तुष्ट नहीं है वह एक नवीन सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाकी स्थापनाकी प्रेरणा भी देता है।

श्री श्री का प्रसिद्ध मुक्त-काव्य-संग्रह महाप्रस्थानम् है।

अनिसेट्टि सुब्बारावजी प्रगतिवादी विचारधाराको बड़े ही कलात्मक ढंगसे व्यक्त करते हैं। अग्निवीणा इनकी कविताओंका संग्रह है।

आरुद्र (भागवतुल शंकर शास्त्री) प्रगतिका आह्वान करनेवालोंमें प्रमुख हैं। त्वमेवाहम् नामक पुस्तकमें आपकी कविताएँ संगृहीत हैं। हालमें ही आपका सिनवाली नामक खण्ड-काव्य प्रकाशित हुआ है।

श्री एनम् नारायणबाबू अति यथार्थवादी कविताओंके प्रसिद्ध कवि हैं। अति नवीन शैली एवं नवीन विचारधारामें आपकी कविता चलती है।

कपालमोक्षम् किटकलासीयम् (खिड़की में दिया) रुधिर ज्योति आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आपकी मृत्यु हाल ही में हुई है।

श्री तेन्नेटि सूरि, श्री बेल्लमकोंडा रामदासु, श्री पट्टाभि श्री कुन्दुर्ति आञ्जनेयुलु आदि इस धाराके प्रसिद्ध कवि हैं।

श्री जलसूत्रं रुक्मिणीनाथशास्त्री पैरोडी (व्यंग्य कविता) लिखनेमें सिद्धहस्त हैं। [illegible] नामक इनका पैरोडी पद्य-संग्रह काफी प्रसिद्ध है।

हैदराबादके कवियोंमें श्री दाशरथी प्रमुख हैं। आप सभी प्रकारकी शैलियोंमें निपुणताके साथ लिख सकते हैं। आपकी कविताओंमें उच्च भावोंमें व्यक्तिगत भावनाओंका सरल और स्वाभाविक प्रवाह है। अग्निधारा रुद्रवीणा आदि आपके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। मस्तिष्कम् लो मर्डरेटरी आपकी एक प्रसिद्ध कविता है।

सरस विचार अनायास ही कविके अन्तस्से प्रसूत हुए हैं। दाशरथी कहते हैं—

है नहीं पहनने
व्याकरणका रेडिमेड लिबास तो मेरे पूर पतले हैं
जनताके सामने (भाव मेरे)।

बानाति नारायण श्री नारायण रेड्डी उतुक सत्यनारायणाचार्य रामराजु तेलंगानाके प्रसिद्ध कवि हैं।

इस प्रकार आधुनिक तेलुगु कविता यद्यपि बंगला एवं अंग्रेजी साहित्यसे प्रेरणा प्राप्तकर प्रारम्भ हुई थी, तथापि अपनी विशेषताओंका उपार्जन कर भिन्न भिन्न धाराओंमें प्रवाहित होती हुई आधुनिक भारतीय साहित्यमें अपना विशिष्ट स्थानपर विद्यमान है। यह भावोंमें वस्तु-चयनमें शैलीमें छन्दोंमें भाषाम आस्थाके सभी क्षेत्रोंमें एक नवीनता लेकर उज्ज्वल भविष्यकी ओर अग्रसर हो रही है।

नाटक

आधुनिक आन्ध्र साहित्यके नाटक यक्ष गानों व वीथि भागवतोंकी अपेक्षा संस्कृत तथा अंग्रेजी नाटक-परम्पराये अत्यधिक प्रभावित हैं। उनके रचना शिल्प-विधानपर संस्कृत व अंग्रेजी नाटक साहित्यका ही प्रभाव परिलक्षित होता है।

१९ वी शतीके उत्तरार्धमें धारवाड़के नाटक समाजने आन्ध्र प्रान्तमें घूम घूमकर पारसी और हिन्दी नाटकोंके प्रदर्शन द्वारा काफी धूम मचा दी। इन नाटकोंकी लोकप्रियतासे प्रोत्साहित होकर तेलुगुमें नाटक रचना करने और उन्हें अभिनीत करानेके लिए कुछ उत्साही युवक मैदानमें आए। प्रत्येक नगरमें एक या दो नाटक-समाजोंकी स्थापना हुई। [illegible]के पश्चात आन्ध्र नेता वेनकट कोंडा वेंकटप्पय्या पन्तुलु और आन्ध्र केसरी टी. प्रकाशम् पन्तुलु भी इसमें भाग लेते थे।

तेलुगु नाटक साहित्यका प्रारम्भिक युग अनुवादात्मक और अनुकरणात्मक रहा है। आधुनिक आन्ध्र साहित्यके प्रतिष्ठापक श्री वीरेशलिंगम पन्तुलुने शाकुन्तल रत्नावली नागेश भट्ट आदि का अनुवाद किया। अभिज्ञान शाकुन्तल के तो तेलुगुमें कोई पच्चीससे अधिक अनुवाद हुए, पर वीरेशलिंगम पन्तुलुका अनुवाद श्रेष्ठ माना जाता है। श्री वेदमु वेंकटराय शास्त्रीने उत्तर रामचरित और हर्षके सभी नाटकोंका श्री वड्डादि सुब्बारायुडुने वेणी संहार या निपाति मालविकाग्निमित्र मुद्राराक्षस मृच्छकटिक बाल रामायण या वेदूरि प्रभाकर शास्त्रीजीने नागानन्द या दासु श्री रामुलने मालती माधवका श्री [illegible] [illegible]ने भासके सभी नाटकोंका अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त नागानन्द कौमुदी महोत्सव कर्पूर मञ्जरी आदि अन्य सभी संस्कृत नाटकोंका तेलुगुमें अनुवाद हुआ है। अंग्रेजीसे शेक्सपियरके नाटकोंके कई अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। बंगला और हिन्दीके नाटकोंके अनुवाद भी हुए हैं। [illegible] कई नाटकोंके कई अनुवाद हुए हैं जिनमें श्री [illegible] सीताराम गुप्तके अनुवाद सुन्दर हैं। श्री टी. एन. राव "चन्द्रगुप्त" "मेना" आदिका श्रीपाद कामेश्वर शास्त्रीने अनुवाद प्रस्तुत किया है।

सन् १८९ ई में श्री कोराड रामचन्द्र शास्त्रीने मञ्जरी मधुकरीयमु की रचना की जो तेलुगुका सर्वप्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। सन् १८७१ म

श्री वाविलाला वासुदेव शास्त्रीने नन्दक राज्य नामक मौलिक नाटककी रचना की।

स्वयं मौलिक नाटकोंकी रचनाकर, उनका प्रदर्शन कर, लोकप्रिय बनाने वाले प्रथम नाटककार और अभिनेता श्री धर्मवरम रामकृष्णाचार्य हैं। इन्होंने बल्लारि नगरमें सरस विनोदिनी सभा की स्थापना की। इस सभाने आन्ध्र प्रान्तमें प्रथमतः पारसी कम्पनियोंके अनुकरणपर नाटकोंका अभिनय किया। श्री आचार्यजीने ३० से अधिक नाटक लिखे हैं और ये सभी नाटक अभिनीत हो चुके हैं। (पन्द्रह नाटक पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं।) इन नाटकोंकी कथावस्तु यद्यपि पौराणिक है, फिर भी घटना-सन्निधान और कल्पना-चातुर्यके कारण ये नाटक यथेष्ट लोकप्रिय हैं। चित्रनलीयम्, विषाद सारंगधर, चन्द्रहास, रुक्मिणी आदि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। अंकोंको दृश्योंमें विभाजित करना, प्रोलोग और एपिलोगका लिखना, अन्य स्वगत भाषण, वृत्तान्त आदि पद्धतियाँ नाटकोंके प्रभावसे इनके नाटकोंमें समाविष्ट हुए हैं। विषाद सारंगधर तेलुगुका प्रथम दुःखान्त नाटक माना जाता है। वर्तमान राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक समस्याओंको आचार्यजीने अपने पौराणिक नाटकोंमें भी स्थान दिया है। श्री रामकृष्णाचार्यको उनकी अनन्य सेवाओंके कारण आन्ध्र प्रदेश आन्ध्र नाटक पितामह के रूपमें याद करता है।

उसी बल्लारी नगरमें एक दूसरे वकील साहब हुए हैं। वे हैं श्री कोलाचलम् श्रीनिवासराव। इन्होंने भी नाटकोंकी रचनाकर उन्हें अभिनीत कराया है। इन्होंने मार्गी-विलास नाटक सभा की स्थापना की। इन्होंने प्रपञ्च नाटक चरित्र (संसारके नाटकोंका इतिहास) लिखा जो एक श्रेष्ठ परिचयात्मक और आलोचनात्मक ग्रन्थ है। राजवाहन भी काफी नाटक लिखे हैं। सुनन्दिनी परिणय, विजयनगर राज्य पतनम्, प्रतापरुद्रीयम्, मधासेना, सत्य हरिश्चन्द्र, पादुका पट्टाभिषेकम् आदि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। विजयनगर राज्य पतनम् बहुत ही लोकप्रिय हुआ है। मौलिक रूपसे ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकोंकी रचनाके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत, तमिल और मराठी नाटकोंके अनुवाद भी प्रस्तुत किए हैं। इन्होंने कुछ सामाजिक नाटक और प्रहसनोंकी भी रचना की है। ये 'आन्ध्र ऐतिहासिक नाटक-पितामह' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

प्रतापरुद्रीयम्, उषा, बोब्बिलि युद्धम् —ये तीन मौलिक नाटक श्री वेदम् वेंकटराय शास्त्रीके हैं। इनमें- प्रतापरुद्रीयम् का काकतीय प्रतापरुद्र और दिल्लीके सुलतानोंके इतिहाससे सम्बन्धित है तेलुगुके ऐतिहासिक नाटकोंमें अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस नाटकके रचना-वैशिष्ट्य, चरित्र चित्रण, पात्रोचित भाषा-प्रयोग, सूक्ष्म व्यंग्य आदि मार्केके हैं। प्रतापरुद्रका मन्त्री यौगन्धरायण भासके यौगन्धरायणकी याद दिलाता है।

पानुगन्टि लक्ष्मीनरसिंहरावजीने लगभग तीस नाटकोंकी रचनाकर, आन्ध्र नाट्यमंचपर भी ख्याति प्राप्त की है। इनके नाटकोंमें पादुका पट्टाभिषेक, राधाकृष्ण, विप्रनारायण बहुत ही लोकप्रिय नाटक हैं। ये नाटक-रचनामें पद्य और गीतोंकी अपेक्षा गद्यको ही महत्व देते हैं।

श्री चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहमजीका गयोपाख्यान आन्ध्रके नाटक-क्षेत्रका श्रेष्ठ और सर्वप्रिय नाटक रहा है। इस नाटककी जितनी प्रतियाँ बिकी हैं उतनी शायद ही किसी दूसरे नाटककी बिकी हों। प्रसन्न-यादवम्, पारिजातापहरणम्, प्रह्लाद चरित्र इनके अन्य प्रसिद्ध नाटक हैं। नरसिंहमजीके नाटकोंपर संस्कृत नाटकोंका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है पर हास्य और व्यंग्ययुक्त वार्तालाप अंग्रेजी नाटकोंकी याद दिलाते हैं।

श्री तिरुपति-वेंकट कवियुगलका लिखा 'पाण्डवो उद्योग-विजयमुलु' इतना प्रसिद्ध हुआ है कि उसके मधुर पद्य जनताकी जबानपर चढ़ गए हैं। इस नाटकका कृष्णराय-बारा (श्रीकृष्णका दूत-कार्य) दृश्य बड़ा मार्मिक और प्रभावशाली बन पड़ा है। इन्होंने महाभारतपर आधारित कुछ और नाटक भी लिखे हैं।

श्री बलिजेपल्लि लक्ष्मीकान्तमका लिखा 'सत्य हरिश्चन्द्र' भी काफी लोकप्रिय बना है। इस नाटकके पद्य बड़े ही मधुर हैं।

तेलुगुके सामाजिक नाटकोंमें श्री गुरजाड अप्पारावका कन्याशुल्क (१८९०) सर्वप्रसिद्ध है। इस नाटकको लिखे सत्तर वर्ष हो गए पर यह आज भी नया है। इसमें बड़े ही तीव्र ढंगसे सामाजिक कुप्रथाओंकी पोल खोली गई है। वेश्या-प्रथा, बाल-विवाह, कन्या-शुल्क (वर शुल्क या दहेज नहीं) नई पीढ़ीके युवकोंके दंभ फैशन आदिका मार्मिक चित्रण हुआ है। यह नाटक सामाजिक सुधारकी दृष्टिसे तैयार किया गया है। पर नाटकीयताकी कसौटीपर उतना खरा नहीं उतरता। इस नाटकका प्रमुख पात्र गिरीशम् आन्ध्र प्रान्तमें ऐतिहासिक पुरुष-सा बन गया है जो शठों और धोखेबाज लोगोंका प्रतिनिधि है। परवर्ती सामाजिक नाटकोंपर कन्याशुल्कम् का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

कविसम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायणने कविता उपन्यासके अतिरिक्त नाटक रचनामें भी अपनी प्रतिभा दर्शाई है। नर्तनशाला, अनारकली, वेनराजु आदि आपके सुन्दर नाटक हैं। नर्तनशालामें कीचक (विराट महाराजका साला) को उदात्त विचार भावके रूपमें चित्रित करनेका सफल प्रयत्न किया है।

उपर्युक्त नाटककारोंके अतिरिक्त सोमराजु रामानुजराव, डॉ. श्री नागभूषणराव, सत्यनारायण, श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री, बालान्त्रपु नागेश्वरराव, गुडिपाटि वेंकट चलम आदि भी प्रमुख हैं। प्राचीन सम्प्रदायके अनुकूल रचे गए ये नाटक अधिकांशतः ऐतिहासिक व पौराणिक रहे हैं। इस प्रथम उत्थानके बाद विषयोंकी दृष्टिसे परिवर्तन हुआ। अब वस्तु और शैलीमें स्पष्ट

परिवर्तन लक्षित होता है। नये उत्थानकी रचनाओंकी सामग्री बहुत कुछ वर्तमान सामाजिक समस्याओंपर ही आधारित है। इसमें केवल गद्यका ही प्रयोग किया गया है। भाषा व्याकरण सम्मत न होकर बोलचालकी है। रचना-विधान और रंगमञ्चके प्रबंधपर अधिकाधिक पाश्चात्य प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

आचार्य आत्रेयके नाटकोंमें मध्यवर्गीय परिवारोंकी समस्याओंका प्रभावशाली चित्रण मिलता है। सामान्य मनुष्यके हृदयमें वर्तमान परिस्थितिके प्रति परिलक्षित हताशा, भय, शंका आदि मनोवृत्तियोंके चित्रणमें भी आत्रेय सिद्धहस्त हैं। *ईंटिकोंप* (*भाड़का मकान*) कप्पलु (मेंढक) 'भय' आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं। कोपल्ले वेंकट रामारावने अपने नाटकोंमें सामाजिक कुराचारोंका खण्डन बड़े जोरदार शब्दोंमें किया है। श्री पिनिसेट्टीकी पल्लेपडुचु (ग्रामीण युवती) में किसान और जमींदारके संघर्षका सुन्दर चित्र है। श्री बुच्चिबाबूका आत्म वञ्चन' बोयी भीमन्नाके पालेरु, दूकिराजु रामदासके मास्टरजी पुनर्जन्म भी अच्छे नाटक हैं। इनके अतिरिक्त नरसराजु वि. सूर्य प्रकाशराव, राममूर्ति नरसिंहराव आदि ख्यातिप्राप्त नाटककार हैं। माना जाता है कि अबतक तेलुगुमें कोई ढाई हजार नाटक लिखे गये हैं।

एकांकी

गत दो दशकोंसे बड़े नाटक लिखनेकी प्रथा कम होती जा रही है और एकांकियोंका प्रचलन बढ़ता जा रहा है। मुख्यतया कालेज और स्कूलके वार्षिक उत्सवोंके उपलक्ष्यमें और मासिक पत्रोंमें प्रकाशनार्थ लिखे गए इन एकांकियों पर पश्चिमी प्रभाव अधिक है।

मद्रासके भू. पू. मुख्य न्यायाधीश श्री पी. वी. राजमन्नार तेलुगुके सर्वप्रथम एकांकी-लेखक माने जाते हैं। इनके एकांकियोंमें मध्यवर्गीय समाजकी समस्याओं और कुप्रथाओंका प्रभावशाली चित्रण मिलता है। 'वह भी कैसे मरे हैं? कृष्णसर्प' 'दोष किसका?' आदि श्री राजमन्नारके सुप्रसिद्ध एकांकी हैं। श्री गुडिपाटी वेंकटाचलमके एकांकियोंपर फ्रायडका गहरा प्रभाव है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धका पुरातन दमन और स्त्रीकी कुण्ठाओंको चलम् ने बिलकुल नग्न रूपमें पर बड़े ही जोरदार शब्दोंमें व्यक्त किया है। भले ही आप उनके भावों व सिद्धान्तोंसे सहमत न हों पर भाषाभिव्यक्तिकी कुशलता प्रभाव और टेकनिककी देखकर उन्हें सराहना ही पड़ेगा। श्री भमिडिपाटि कामेश्वररावके एकांकी मधुर हास्यसे युक्त पाठकोंको बार-बार पढ़नेके लिए विवश करते हैं। डा. मारेमड रामाराव ऐतिहासिक एकांकी लिखनेमें सिद्धहस्त हैं। चिन्ता दीक्षितुलु मल्लादि विश्वनाथ डी. वी. नरसराजु मल्लादि अवधानीने भी अच्छे एकांकी लिखे हैं।

१९४७ के बादके एकांकीने यथार्थ (व्यक्ति) के चित्रण की ओर अधिक ध्यान दिया है। बुच्चिबाबूका उमर खैयाम व शिल्पदर्शिता इस नव दृष्टिकोणके

वेंकटरमणय्याका मधुमालती छत्रशाही सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। श्री तेन्नेटिसूरिका चंगिजखान मंगोलियाके शासकके चरित्रका प्रभावशाली चित्र अंकित करता है।

देशकी समस्याओंको लेकर उपन्यास लिखनेवालोंमें श्री गुडिपाटि वेंकट चलमका प्रथम स्थान है। भावोंमें क्रान्तिके साथ चलम का रचनाकौशल अपना सानी नहीं रखता। शशिरेखा ब्राह्मणीकम् अमीना मैदान आदि आपके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। श्री धनिकोंडा हनुमन्तराव आदिने चलम का अनुकरण किया है।

हास्यप्रधान उपन्यास लिखनेवालोंमें श्री मुनि माणिक्यम नरसिंहाराव मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री कम्मूरम रविसत्यनाथ शास्त्री आदि प्रमुख हैं। नरसिंहा रावके उपन्यास सरस होते हैं। उनके उपन्यासोंकी नायिका कान्तम आपके पाठकोंका पुलकित करती रहती है। नरसिंह शास्त्रीके बैरिस्टर पार्वतीशम को एक-बार यदि पढ़कर हँसे बिना नहीं रहा जा सकता।

मनोवैज्ञानिक पद्धतियोंको आधार बनाकर लिखनेवालोंमें कोडवटिगंटि कुटुम्बराव गोपीचन्द बुच्चिबाबु प्रमुख हैं। कुटुम्बरावके 'पढ़ाई' 'स्वीपस्टेक' आदिमें मनोविज्ञानके साथ-साथ कथा सन्निवेश भी अच्छा बन पड़ा है। गोपीचन्दके अंधेरे कौन गूनके पत्ते आदि उपन्यासोंमें मनके संघर्षका चित्रण हुआ है। सौरीस राचकोण्डा विश्वनाथ शास्त्री और बुच्चिबाबूने मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास लिखे हैं।

पिनिसेट्टी श्रीरामुलुके कलमा (घोर सेना) शीर्षक उपन्यासोंमें धनी और निर्धन परिवारोंके जीवनके अन्तरको सुस्पष्ट रूपसे चित्रित किया गया है। नटराजन नामक तमिल भाषा भाषीने धारणा के उपनामसे मल्ले-पूराई अरक्कर कोन मरु नामक तीन सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। इनमें निम्न और मध्यम वर्गकी समस्याओंका सुन्दर चित्रण हुआ है। असमय मृत्युने इनकी लेखनी थाम दी वरन् इनसे तेलुगु उपन्यास साहित्यको काफी आशाएँ थीं।

आजकल जासूसी उपन्यासोंकी बाढ़-सी आ रही है। इनमेंसे कुछ अच्छे अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। आरुद्र कन्नाराव कोम्मूरि साम्बशिवराव अच्छे उपन्यास लिखे हैं।

कुछ महिलाओंने भी उत्तम उपन्यासोंकी रचना की है। पर्याप्ति सुरम्माका सुप्रसिद्धा चरित्र (पौराणिक) कुमारी लक्ष्मीनरसम्माका सुमति अमूर्त (सामाजिक) मालती चन्दूरका चम्पक दीपक वसुन्धराका दूरद पराव आदि इस दिशामें उल्लेखनीय हैं।

इधर भारतीय भाषाओंके उपन्यासोंके अतिरिक्त अनेक प्रान्तीय उपन्यासोंके भी अनुवाद हो चुके हैं और हो रहे हैं।

इस प्रकार आन्ध्रका उपन्यास साहित्य विविध उपन्यास-रचनाओंसे सुसम्पन्न है। अनुवाद अनुकरणके साथ-साथ विभिन्न शैलियोंके मौलिक और श्रेष्ठ उपन्यासोंकी भी रचना हुई है। तेलुगु उपन्यासका विश्व-साहित्यमें विशिष्ट स्थान है।

कहानी

यूरोपीय साहित्यके सम्पर्कसे आधुनिक आन्ध्र गद्य साहित्यमें आई हुई विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियोंमें कहानीका विशिष्ट स्थान है। पश्चिमी कहानियोंके विशिष्ट शिल्प-विधान एवं टकनीकसे सम्पन्न होकर आजकी तेलुगु कहानीकी गणना संसारकी सर्वश्रेष्ठ कहानियोंमें होती जा रही है।* गद्यकी सभी विधाओंका श्रीगणेश करनेवाले वीरेशलिंगमजीके हाथों केवल इस विधाका ही प्रारम्भ नहीं हुआ। स्व श्री गुरजाड अप्पारावने १९१० में अंग्रेजीमें एक कहानी लिखी थी। उसके बाद आपका नाम सुधार आदि तेलुगु कहानियाँ लिखकर आधुनिक कथा-साहित्यका श्रीगणेश किया।

वेदमु वेंकटराय शास्त्रीने भोज-कालिदासकी कथाओंमेंसे 'बेताल पञ्च विंशति' और कथा सरित्सागर नामक तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित किए। श्री चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहमजीने राजस्थान कथावली 'चमत्कार मञ्जरी' विनयपा गुच्छमु आदि कहानी-संग्रह प्रकाशमें लाए। प्राचीन और नवीनका सामञ्जस्य करते हुए विभिन्न विषयोंको आधार बनाकर लिखनेवाले सुधारवादी लेखक हैं श्री वेलूरि शिवराम शास्त्री। आधुनिक सभ्यतापर मीठी चोट करते हुए हास्य प्रधान और कालोपयोगी कहानी लिखनेमें सिद्धहस्त थे चिन्ता दीक्षितुलु। श्री श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्रीकी कहानियोंमें तेलुगु कहानीका ठेठ रूप परिलक्षित होता है जो पश्चिमी प्रभावसे परे है। सहज सुन्दर वार्तालाप और यथार्थ घटनाओंको लेकर इनकी एक-एक कहानी अमृतकी बूंद है। केवल वार्तालाप द्वारा ही पूरी कहानी लिखना इनकी विशेषता है। श्री तल्लावज्झल शिवशंकर स्वामी अडिवि बापिराजु विश्वनाथ सत्यनारायण आदि भी सुप्रसिद्ध कहानीकार हैं। व्यंग्य और चमत्कारसे भरी हुई कहानियोंके लिए प्रसिद्ध हैं श्री कोडवटिगण्टि कुटुम्बराव।

कथावस्तुमें शैलीमें भावमें और भाषामें भी निरन्तर नवीनता लानेवाले लेखक हैं श्री गुडिपाटि वेंकटचलम्। साहित्यिक इतिहासमें विप्लवा विप्लव कारी के नामोंसे प्रसिद्ध हैं। विरोधी इनकी कटु आलोचना सहन करते हुए भी अपने मार्गपर अचल बने रहे। मुख्यतः सेक्स समस्याको लेकर लिखी गई आपकी कहानियाँ काफी प्रसिद्ध हुई हैं।

---

* श्री पालगुम्मि पद्मराजुकी लिखी 'तूफान' नामक कहानी सन् १९५२ में विश्व कहानी प्रतियोगितामें द्वितीय पुरस्कार प्राप्त कर चुकी है। हालमें श्री आरुद्रकी लिखी 'मेलावर्डीके मूर्ख' शीर्षक कहानीको भी उत्तम पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

श्री मुनिमाणिक्यम नरसिंहरावजी 'कान्तम्' तेलुगु प्रान्तकी बहुश्रेणि प्रतिनिधि हैं। आपकी कहानियाँ प्रशान्त और शान्त दैनिक जीवनको मधुर हास्यसे भर देती हैं। इन कहानियोंमें 'कान्तम्' को नायिका बनाकर गृहस्थ-जीवनका सुन्दर चित्रण किया गया है।

श्री इलपर्ति हनुमच्छास्त्री और मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्रीने अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। इलपर्तिकी शैली पाण्डित्यपूर्ण है तो मोक्कपाटिकी शैली अति सरल है।

श्री पालगुम्मि पद्मराजुने कहानियाँ कम लिखी हैं पर प्रत्येक कहानी अपने विशिष्ट रीतिसे प्रसिद्ध है। आकर्षक कथा-वस्तु, सहज सुन्दर घटनाएँ, मधुर वार्तालाप आदिने इनके टेक्नीकमें चार चाँद लगा दिए हैं। 'गालिवान' कहानीने विश्व लघुकथा प्रतियोगितामें द्वितीय पुरस्कार प्राप्त कर तेलुगु कहानीको गौरव प्रदान किया है।

श्री करुण कुमारने कहानियोंमें अपने उपनामको सार्थक किया है। आपकी कहानियोंमें ग्रामीण जनताके दैनिक जीवनकी झाँकीके साथ-साथ आधुनिक सभ्यताके कारण सिसकनेवाले नागरिकोंके चित्र भी मिलते हैं।

श्री गोपीचन्द एक सफल कहानीकार हैं। मानसिक समीक्षा और सत्यान्वेषणके परदेमें छिपी भावनाओंको आप बड़ी प्रभावशालीतासे व्यक्त करते हैं। ऐतिहासिक घटनाएँ, सामाजिक परिस्थितियाँ, व्यक्तियोंकी मानसिक गतिविधियाँ और तदनुकूल भिन्न-भिन्न मनोभावनाओंको समझकर रचना करनेवाले हैं श्री गोपीचन्द। सामाजिक और राजनैतिक समस्याओंसे प्रभावित रहनेके कारण इनकी कहानियाँ हृदयकी अपेक्षा मस्तिष्कको अधिक प्रभावित करती हैं।

नवीन कहानी-लेखकोंमें श्री बुच्चिबाबूका अपना विशिष्ट स्थान है। अंग्रेजी साहित्यके पठन-पाठनके कारण आपने अपनी कहानी-शिल्पमें पश्चिमी रीतियोंको अत्यधिक अपनाया है। रचनाओंमें दृष्टिगोचर होनेवाले उपमान आपकी प्रतिभाको बतलाते हैं तो व्याख्याएँ, वार्तालाप आपकी प्रतिभाको। हृदयके साथ-साथ मस्तिष्कको भी [illegible] देनेमें आप सिद्धहस्त हैं। टेक्नीकपर पूर्ण अधिकार होनेके कारण कहानियोंमें [illegible] देनेमें आप समर्थ हैं।

[illegible] अनिसेट्टि आदि लेखकोंकी गणना यथार्थवादी लेखकोंमें की जाती है। श्री [illegible] और श्रीमती मालती चन्दूरकी कहानियोंका भी विशिष्ट स्थान है। मधुरान्तकम राजाराम, [illegible], [illegible], [illegible], हनुमच्छास्त्री, दाशरथि आदि अन्य प्रसिद्ध कहानीकार हैं। श्री [illegible] हास्यरस प्रधान कहानियाँ लिखनेमें प्रसिद्ध हैं। आजकल आन्ध्र प्रदेशमें [illegible] आदि लेखक यथार्थवादी कहानियाँ लिख रहे हैं।

श्रीमती वासिरेड्डी सीतादेवी, इल्लिन्दल सरस्वती देवी, श्रीमती (डॉक्टर) पी. श्रीदेवीने भी अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। नन्दगिरि इन्दिरादेवी, मल्लभूपि मुलावला रानी, आनन्दी रानी आदि लेखिकाएँ अभी-अभी इस क्षेत्रमें प्रवेश कर रही हैं। इनका भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है।

पूर्वोक्त और अन्य भारतीय भाषाओंकी अनेक श्रेष्ठ कहानियोंके सुन्दर अनुवादोंसे तेलुगुका कथा-साहित्य सम्पन्न हो चुका है। बंगलाके शरत्चन्द्र और हिन्दीके प्रेमचन्दसे तेलुगुके महान साहित्यके पाठक अत्यधिक प्रभावित रहे हैं।

जीवनियाँ

तेलुगुमें आत्मकथाएँ और जीवनियाँ भी अधिक संख्यामें लिखी गई हैं। वीरेशलिंगम पन्तुलु और चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहरावकी आत्मकथाएँ, उनके जीवनकी विशेषताओंके अतिरिक्त उस समयकी सामाजिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियोंका परिचय देनेवाली हैं। आन्ध्र-केसरी टंगुटूरि प्रकाशम पन्तुलु, कोण्डा वेंकटप्पय्य पन्तुलु, अय्यदेवर कालेश्वररावजी आदिकी आत्मकथाएँ साहित्यमें ही नहीं आन्ध्रके कांग्रेस आन्दोलनके इतिहासमें विशेष स्थानकी अधिकारिणी हैं। वेदूरि प्रभाकर शास्त्रीजीकी प्रज्ञा प्रभाकरमु वैसे शुद्ध आत्मकथा नहीं, पर उनके तात्त्विक जीवनकी अनेक विशेषताओंपर प्रकाश डालनेवाली है।

वीरेशलिंगम पन्तुलु और चिलकमर्तिजीने कई सुन्दर जीवनियाँ लिखी हैं। स्वामी चिदानन्दजीकी रामकृष्ण और विवेकानन्दकी जीवनी विशेष उल्लेख्य हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई महान व्यक्तियोंकी जीवन-कथाएँ लिखी गई हैं।

आलोचना

आलोचनात्मक साहित्यके जन्मदाता भी श्री वीरेशलिंगम ही हैं। आन्ध्र कवुल चरित्र हिन्दी साहित्यमें मिश्रबन्धु विनोद के समान ही आन्ध्र साहित्यके सभी प्राचीन साहित्यकारोंकी जीवनी एवं रचनाओंपर प्रकाश डालती है। गुरजाडा श्रीराम मूर्तिकी कवि जीवितमुलु भी ऐसी ही रचना है। इतर उल्लेख्य रचनाओंमें कट्टमञ्चि रामलिङ्गारेड्डीजी (Sir C. R. Reddy) का कवित्व-तत्त्व-विचारमु, पिंगलि वेंकट सुब्रह्मण्य शास्त्रीजीका महाभारत चरित्रमु, अनन्तकृष्ण शर्माजीका वेमना और काव्यालोकमु, पुट्टपर्ति नारायणाचार्यका प्रबन्ध नायिकाएँ, विश्वनाथ सत्यनारायणजीका 'नन्नयकी प्रसन्न कथा-कलितार्थयुक्ति', कोराड राम कृष्णय्याजीका महाभारत कविता विमर्शनमु, वेदूरि प्रभाकर शास्त्रीजीका शृंगार श्रीनाथमु आदि ग्रन्थ हैं। साहित्यिक इतिहासोंमें चिलुकूरि वेंकट नारायणरावका संग्रह आन्ध्र-वाङ्मय चरित्रमु, टेकुमल्ल अच्युतरावका विजयनगर साम्राज्यका आन्ध्र वाङ्मयमु, कुरुगंटि सीतारामय्यका नव्यान्ध्रसाहित्यवीथुलु, चलकूरि वेंकट रमणय्यका दक्षिणान्ध्र कवित्व चरित्रमु, निडदवोलु वेंकटरावजीका 'दक्षिणान्ध्र वाङ्मय चरित्र' उल्लेखनीय हैं। अनुसंधानात्मक ग्रन्थोंमें भी डॉ. रामराजुका आन्ध्र-

वाङ्गमयमु' श्री निडदवोलु वेंकटरावजीका 'समयवुग' श्री के. वी. रामकोटि शास्त्रीका त्रिशत-सविमर्श और वेदान्त श्री के. वीरभद्ररावका आन्ध्र साहित्यपर अंग्रेजीका प्रबन्ध उल्लेखनीय हैं। तेलुगु भाषाकी उत्पत्ति और विकासपर डॉ. चिलुकूरि नारायणराव, डॉ. गण्टि जोगिसोमयाजि, कोराड रामकृष्णय्या, बलान्तिन सीताराम स्वामी शास्त्रीके ग्रन्थ श्रेष्ठ हैं, किन्तु तेलुगुमें आलोचनात्मक साहित्य सर्जनात्मक साहित्यकी अपेक्षा बहुत कम है।

हैदराबादस्थित आन्ध्र सारस्वत परिषद् ने भी कई अच्छे ग्रन्थोंका प्रकाशन किया है जिनमें सुरवरम् प्रताप रेड्डीका 'आन्ध्रोंका सामाजिक इतिहास' 'मनमागम भावप्रकाश' दि मन्न विद्वानोंकि मापक 'आन्ध्र वाङ्गमय चरित्र संक्षिप्तम् सूर्यनारायण शास्त्रीजीका काव्यालंकार संग्रह विवरण मुख्य हैं।

निबन्ध रचनामें पानुगण्टि लक्ष्मीनरसिंहरावके 'साक्षी' के छह भाग (जो एडिसनके स्पेक्टेटरके समान व्यंग्यात्मक एवं आलोचनात्मक हैं।) मुट्नूरि कृष्णारावजी (कृष्णा पत्रिकाके प्रसिद्ध सम्पादक) के विविध निबन्ध कामराजु हनुमन्तरावजीका सरसमय निबन्धावलि 'मल्लम्पल्लि सोमशेखर शर्माजीके ऐतिहासिक प्रधान लेख, कोराड [illegible] रामकृष्णय्याजीके भाषा और साहित्यपर लेख प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त 'भारती' 'आन्ध्र पत्रिका' आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें समय-समयपर काफी अच्छे लेख प्रकाशित होते रहते हैं।

इस प्रकार तेलुगु साहित्य गौरवकी गरिमासे सम्पन्न विश्व-साहित्यके इतिहासमें अपना विशिष्ट स्थानका अधिकारी बना हुआ है।

• • •

काट्टूरि वेंकटेश्वरराव
और
पिंगलि लक्ष्मीकान्तम
[कवि परिचय]

काटूरि वेंकटेश्वरराव
और
पिंगलि लक्ष्मीकान्तम

• • •

तेलुगु साहित्यके इतिहासमें दो कवियों द्वारा रचा गया काव्य प्रबोध-चन्द्रोदयमु है। यह पद्य-काव्य नन्दि मल्लय्य तथा घण्ट-सिंगन (१५वीं शतीका उत्तरार्ध) नामक दो कवियों द्वारा रचा गया। एक कवि एक चरण कहता तो दूसरा कवि दूसरा चरण—इस प्रकार समग्र काव्यकी रचना होती थी। इस कवियुगलके बाद तेलुगु साहित्यके आधुनिक कालमें कई कवियुग्मोंके दर्शन होते हैं। इन कवियुग्मोंमें तिरुपति-वेंकट कवुलु वेंकट रामकृष्ण कवुलु, वेंकट-पार्वतीश्वर कवुलु वेंकुल पल्लि कवुलु आदिके नाम लिए जा सकते हैं। इस प्रकार दो कवियोंके मिलकर, एक कविके समान कविता करनेकी प्रथा तेलुगु साहित्य प्रदेशमें ही प्रचलित है। यह यहीं की विशिष्ट साधना है। काव्य-रचना ही नहीं अवधान* करते समय

---

* अवधान दो प्रकारके होते हैं अष्टावधान और शतावधान। शतावधान में सौ लोगोंकी उनकी इच्छानुसार (विषय और वृत्त) संस्कृत और तेलुगुमें समस्त सौ आशु पद्योंके प्रथम चरण कहना और अन्तमें पूरे सौ पद्योंको फिर सुनाना पड़ता है। अष्टावधान में चार-पाँचका आशु कविता सुनाना काव्य चर्चा या आकाश पुराण घण्टियोंकी गिनना घण्टानाद आदि आठ कार्योंमें चित्तको एक ही समय एकाग्र रखना पड़ता है।

सैकड़ों दर्शकोंके समक्ष ८ या १०० पृच्छकोंका उनकी इच्छापर विभिन्न विषयोंपर आशु कविता रचकर उन्हीं पद्योंका क्रमसे सुना देना था यह कवियुग्म। इन कवियुग्मोंमें श्री तिरुपति-वेंकट कवुल (दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री और चेळ्ळपिळ्ळ वेंकट शास्त्री) अति प्रसिद्ध हैं। आधुनिक तेलुगु कवियोंमें उनके कितने प्रत्यक्ष शिष्य हैं तो कई परोक्ष। एक प्रकारसे आधुनिक-तेलुगु-काव्यसाहित्यके वे ऐसे सूर्य हैं जिनके प्रकाशमें नव चैतन्य फैल पड़ा।

इस कवियुग्मके लब्धप्रतिष्ठ शिष्योंमें पिंगलि-काटूरि-कवि हैं। एक श्री पिंगलि लक्ष्मीकान्तमजी हैं तो दूसरे काटूरि वेंकटेश्वरराव हैं।

श्रीकृष्णदेवरायलुके दरबारके सुप्रसिद्ध कवि पिंगलि सूरनके वंशके हैं लक्ष्मीकान्तमजी। लक्ष्मीकान्तमजीका जन्म कृष्णा जिलेके बन्दरपल्लि तालुकेके आरमुरु नामक गांवमें १० जनवरी सन् १८९४ को हुआ था। आपकी माताका नाम कुटुम्बम्मा तथा पिताका नाम श्री वेंकटरत्नम है।

वेंकटेश्वररावजीका जन्म कृष्णा जिलेके काटूर नामक ग्राममें १५ अक्टूबर १८९२ को हुआ था। आप श्री वेंकटकृष्णय्याके पुत्र थे पर अपने छोटे दादाको गोद दिए गए थे। जहाँ आप दत्तक दिए गए थे उन दत्तकके नाम (माता-पिता) लक्ष्मम्मा और गोपय्या थे।

लक्ष्मीकान्तमजीके पिता बन्दरपल्लि जमींदारोंके आमुदालंका में गांवके मुखिया बन जीवनयापन करते थे। लक्ष्मीकान्तमजीने मैट्रिक तक मछलीपट्टणम् के हिन्दू हाईस्कूलमें और एफ. ए (इन्टर) और बी. ए वहींके नोबेल कालेजसे किया। १९०९में जब आप नवीं कक्षामें पढ़ रहे थे तब तिरुपति-वेंकट कवियोंने मछलीपट्टणममें शतावधान किया। उसे देखते ही लक्ष्मीकान्तमजीमें कविता करनेकी इच्छा पैदा हुई। उसके बाद वेंकट शास्त्रीजीसे आशीर्वाद प्राप्तकर आप लगभग तीन वर्ष तक गुरुजीके यहाँ रहे। यहाँ आपने संस्कृत और आन्ध्र भाषाओंका अच्छा अध्ययन किया।

सन् १९१९ में बी. ए पास करनेके बाद आपकी नियुक्ति नोबिल पाठशालामें आन्ध्र भाषाके अध्यापकके पदपर हुई थी। चार वर्षके बाद आप उसी कालेजमें प्राध्यापक बने। पुनः चार वर्ष बाद आप मद्रास विश्वविद्यालयके रिसर्च फेलो बने। तीन सालके बाद तञ्जाऊरके सरस्वती महल-पुस्तकालयमें बैठकर आपने कई प्राचीन ताल-पत्र ग्रन्थोंका अध्ययन किया। आपने १९१० में मद्रास विश्वविद्यालयसे एम ए की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९११ में आप आन्ध्र विश्वविद्यालयमें तेलगु विभागके आचार्यके पदपर नियुक्त हुए। वहाँसे अवकाश ग्रहण करनेके पश्चात् छह-सात वर्ष आप आकाशवाणीके विजयवाड़ा केन्द्रमें संस्कृत विभागके निरीक्षक रहे। आजकल आप तिरुपतिके वेंकटेश्वर विश्वविद्यालयमें तेलगु विभागके अध्यक्ष एवं प्रोफेसरके पदपर हैं। ६८ वें वर्षमें इस पदपर नियुक्त होना आपकी विद्वत्ता और योग्यताका ज्वलन्त प्रमाण है। आप केन्द्रीय-साहित्य-अकादमीके भी सदस्य हैं।

तञ्जाऊरमें प्राप्त 'त्रिपुर-भारत' का आपने शुद्ध सम्पादन किया और उक्त ग्रन्थको अपनी एक विद्वत्तापूर्ण भूमिकाके साथ आन्ध्र विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित करवाया है। श्री वेदूरि प्रभाकर शास्त्री द्वारा सम्पादित 'रंगनाथ रामायणम्' के लिए लिखी भूमिका आपके 'शास्त्रमर्मज्ञ' विद्वत्ताको प्रदर्शित करनेवाली है। 'मधुर पण्डित राजम्' इनकी एक सुन्दर कृति है। जिसमें पण्डितराज जगन्नाथके सुन्दर श्लोकोंका सरल व सरस अनुवाद प्रस्तुत किया है। *गौतमी व्यासमुलु* आपके साहित्यिक एवं आलोचनात्मक लेखोंका संग्रह है। इनके अतिरिक्त आपने कई पुस्तकोंके लिए भूमिकाएँ लिखी और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें समय-समयपर कई पाण्डित्यपूर्ण लेख भी लिखे हैं। आकाशवाणीमें रहते समय आपने संस्कृतके लगभग सभी नाटकोंके रेडियो रूपक प्रसारित किए हैं। युवावस्थामें सफल अभिनेताके रूपमें भी आप प्रसिद्ध थे।

वेंकटेश्वररावके पूर्वजोंके घरका नाम 'कलपटु' था पर जबसे वे 'काटूर' में आकर बस गए, तबसे 'काटूरि' कहलाए। बचपनमें ही आपको आपके [illegible] गोद ले लिया था। आपकी प्रारम्भिक पढ़ाई तो काटूरमें ही हुई। [illegible] वीं कक्षा तक गुडिवाडामें पढ़कर, वहाँसे आप मछलीपट्टणम् पहुँचे। वहाँ आपको [illegible] सम्पर्कि संगति प्राप्त हुई और चेळ्ळपिळ्ळ वेंकटशास्त्रीकी सेवाका शुभअवसर प्राप्त हुआ।

स्वयं कविके शब्दोंमें सुनिए —

'पिंगळि काटूरि सुकवि तो
संगतम्मु चेळ्ळपिळ्ळमहागुरुकृप न
मुं गविमाकुनि याचि
यैः गौरोक पदरचन चेसु चपलत्वम् ।'

[सुकवि पिंगळि लक्ष्मीकान्तकी संगति और गुरुवर चेळ्ळपिळ्ळ वेंकटशास्त्रीजीकी कृपाने ही मुझे कवि बनाया है। इसीके परिणामस्वरूप कुछ कविता करके मैं अपनी बुद्धिकी चपलता ही दिखाता हूँ।]

आप सन् १९ से ४१ तक मछलीपट्टणम् स्थित नागनाथ कालेजके प्रिंसिपाल बने रहे। उसके बाद आपने आन्ध्रके प्रसिद्ध साप्ताहिक 'कृष्णा पत्रिका' का सम्पादन भार सम्हाला। सन् ५२ तक सफलतापूर्वक इस कामको निभाया।

स्वर्गीय लक्ष्मीकान्तजी और वेंकटेश्वररावजी इस कविद्वयके शिष्य हैं जिन्होंने अपने काव्योंको किसी तरहके किसीप्रकार भी उसे 'तिरुपति-वेंकटीय' ही माना है। उसी परम्पराके अनुकूल इन्हें भी 'लक्ष्मीकान्त-वेंकटेश्वर कवि' या 'पिंगळि-काटूरि कवि' होना चाहिए था। पर प्राचीन सम्प्रदायके अनुरूप कुछ काव्य तो इन दोनों कवियोंने मिलकर लिखे हैं। उनपर नाम तो अलग अलग ही लिखे गए हैं। 'तोलकरि' मुक्तकसंग्रह 'सौन्दरनन्दम्' आदि काव्य दोनोंने मिलकर लिखे हैं और कुछ काव्य

सैकड़ों दर्शकोंके समक्ष ८ या १० घण्टोंतक उनकी इच्छापर विभिन्न विषयोंपर आशु कविता रचकर सभी पक्षोंको भ्रममें डाल देता था यह कवियुग्म। इस कवियुग्मोंमें श्री तिरुपति-वेंकट कवुल (दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री और चळ्ळपिळ्ळ वेंकट शास्त्री) अति प्रसिद्ध हैं। आधुनिक तेलुगु कवियोंमें उनके बहुतसे प्रत्यक्ष शिष्य हैं तो कई परोक्ष। एक प्रकारसे आधुनिक-तेलुगु काव्यसाहित्यके वे ऐसे सूर्य हैं जिनके प्रकाशमें नव चैतन्य फैल पड़ा।

इस कवियुग्मके लब्धप्रतिष्ठ शिष्योंमें पिंगलि-काटूरि-कवि हैं। एक श्री पिंगलि लक्ष्मीकान्तम हैं तो दूसरे काटूरि वेंकटेश्वरराव हैं।

श्रीकृष्णदेवरायके दरबारके सुप्रसिद्ध कवि पिंगलि सूरनके वंशज हैं लक्ष्मीकान्तमजी। लक्ष्मीकान्तमजीका जन्म कृष्णा जिलेके चल्लपल्लि ताल्लुकेके आर्तमूरु नामक गांवमें १ जनवरी सन् १८९४ को हुआ था। आपकी माताका नाम बुटुम्बम्मा तथा पिताका नाम श्री वेंकटरत्नम है।

वेंकटेश्वररावजीका जन्म कृष्णा जिलेके काटूरु नामक ग्राममें १५ अक्टूबर १८९५ को हुआ था। आप श्री वेंकटकृष्णय्याके पुत्र थे पर अपने छोटे दादाकी गोद दिए गए थे। यहीं आप दत्तक लिए गए थे उन दत्तक नाम (माता-पिता) नरसम्मा और कोण्डय्या थे।

लक्ष्मीकान्तमजीके पिता चल्लपल्लि जमींदारीके आमुदार्लंका में गांवके मुखिया बन जीवनयापन करते थे। लक्ष्मीकान्तमजीने मैट्रिक तक मछलीपट्टनम् के हिन्दू हाइस्कूलसे और एफ. ए. (इन्टर) और बी. ए. यहींके नोबल कालेजसे किया। १९ १४ जब आप इसी कक्षामें पढ़ रहे थे तब तिरुपति-वेंकट कवियोंने मछलीपट्टनममें शतावधान किया। उसे देखते ही लक्ष्मीकान्तमजीमें कविता करनेकी इच्छा पैदा हुई। उसके बाद वेंकट शास्त्रीजीसे आशीर्वाद प्राप्तकर आप लगभग तीन वर्ष तक गुरुजीके यहाँ रहे। वहाँ आपने संस्कृत और आन्ध्र भाषाओंका अच्छा अध्ययन किया।

सन् १९१९ में बी. ए. पास करनेके बाद आपकी नियुक्ति नोबिल पाठशालामें आन्ध्र भाषाके अध्यापकके पदपर हुई थी। चार वर्षके बाद आप उसी कालेजमें प्राध्यापक बने। पुनः चार वर्ष बाद आप मद्रास विश्वविद्यालयके रिसर्च फेलो बने। तीन सालके बाद तंजाऊरके सरस्वती महल-पुस्तकालयमें बैठकर आपने कई प्राचीन ताड़-पत्र ग्रन्थोंका अध्ययन किया। आपने १९३१ में मद्रास विश्वविद्यालयसे एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९३१ में आप आन्ध्र विश्वविद्यालयके तेलुगु विभागके आचार्यके पदपर नियुक्त हुए। वहाँसे अवकाश ग्रहण करनेके पश्चात् छह-सात वर्ष आप आकाशवाणीके विजयवाड़ा केन्द्रमें संस्कृत विभागके निरीक्षक रहे। आजकल आप तिरुपतिके वेंकटेश्वर विश्वविद्यालयमें तेलुगु विभागके अध्यक्ष एवं प्रोफेसरके पदपर हैं। ६८ वें वर्षमें इस पदपर नियुक्त होना आपकी विद्वत्ता और योग्यताका ज्वलन्त प्रमाण है। आप केन्द्रीय-साहित्य-अकादमीके भी सदस्य हैं।

तन्जाऊरमें प्राप्त 'द्विपद-भारत' का आपने सुष्ठु सम्पादन किया और उस ग्रन्थको अपनी एक विद्वत्तापूर्ण भूमिकाके साथ आन्ध्र विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित करवाया है। श्री वेदूरि प्रभाकर शास्त्री द्वारा सम्पादित 'रंगनाथ रामायणमु' के लिए लिखी भूमिका स्वयं काटूरिजीकी विद्वत्ताको प्रदर्शित करनेवाली है। 'मधुर पण्डित-राज्यमु' इनकी एक सुन्दर कृति है। जिसमें पण्डितराज जगन्नाथके सुन्दर श्लोकोंका सरल व सरस अनुवाद प्रस्तुत किया है। 'नीलगिरी व्यासमुलु' आपके साहित्यिक एवं आलोचनात्मक लेखोंका संग्रह है। इसके अतिरिक्त आपने कई पुस्तकोंके लिए भूमिकाएँ लिखीं और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें समय-समयपर कई पाण्डित्यपूर्ण लेख भी लिखे हैं। आकाशवाणीमें रहते समय आपने संस्कृतके लगभग सभी नाटकोंके रेडियो रूपक प्रसारित किए हैं। युवावस्थामें सफल अभिनेताके रूपमें भी आप प्रसिद्ध थे।

वेंकटेश्वररावके पूर्वजोंके घरका नाम 'कलपटपु' था पर जबसे वे काटूर में आकर बस गए, तबसे 'काटूरि' कहलाए। बचपनमें ही आपको आपके छोटे दादाने गोद ले लिया था। आपकी प्रारम्भिक पढ़ाई तो काटूरमें ही हुई। ८ वी कक्षा तक गुडिवाडामें पढ़कर, वहाँसे आप मछलीपट्टणम् पहुँचे। वहाँ आपको लक्ष्मीकान्तमजीकी अच्छी संगति प्राप्त हुई और चेळ्ळपिळ्ळ वेंकटशास्त्रीकी सेवाका सुअवसर प्राप्त हुआ।

स्वयं कविके शब्दोंमें सुनिए —

'पिंगळि काटूरु सुकवि तो
संगतम्मु चेळ्ळपिळ्ळ सद्गुरुकृप न
म्मुं गविनाबुनि मार्चि
नें गीतोक पद्यरचन चेसु जयम्मन्।'

[सुकवि पिंगलि लक्ष्मीकान्तकी संगति और गुरुवर चेळ्ळपिळ्ळ वेंकटशास्त्रीजीकी कृपाने ही मुझे कवि बनाया है। इसीके परिणामस्वरूप कुछ कविता करके मैं अपनी बुद्धिको धन्य ही समझता हूँ।]

आप सन् ३९ से ४१ तक मछलीपट्टणम् स्थित नगरके कालेजके प्रिन्सिपाल बने रहे। उसके बाद आपने आन्ध्रकी प्रसिद्ध साहित्यिक 'कृष्णा पत्रिका' के सम्पादनका भार सम्हाला। सन् ५२ तक सफलतापूर्वक उस कार्यको निभाया।

लक्ष्मीकान्तजी और वेंकटेश्वररावजी उस कविगुरुके शिष्य हैं जिन्होंने अलग काव्योंको लिखकर एवं मिलकर भी उसे 'तिरुपति-वेंकटीय' ही माना है इसी परम्पराके अनुकूल इन्हें भी 'लक्ष्मीकान्त-वेंकटेश्वर कवि' या 'पिंगलि-काटूरि कवि' होना चाहिए था। पर प्राचीन सम्प्रदायके अनुरूप कुछ काव्य तो इन दोनों कवियोंने मिलकर लिखे हैं। उनपर नाम तो अलग-अलग ही लिखे गए हैं। तथापि, 'मुक्तक-संग्रह' 'सौन्दरनन्दमु' आदि काव्य दोनोंने मिलकर लिखे हैं और कुछ काव्य

और रचनाएँ अलग-अलग लिखी हैं। आपने अपनी रचनाओंमें परम्परा और युगबोधको श्रद्धा भावके साथ अपने व्यक्तित्वको भी कायम रखा है। प्रस्तुत लेखक भी कादूरि वेंकटेश्वररावजीपर ही लिखना है फिर भी लक्ष्मीकान्तमके बिना वेंकटेश्वररावका पूर्ण परिचय नहीं दिया जा सकता। अतः दोनोंका परिचय और दोनोंके काव्यों (वेंकटेश्वररावजीकी रचनाओंके अतिरिक्त) से उद्धरण दिए गए हैं। इन दोनों कवियोंके संगमने कालान्तरमें सम्मुचयका रूप धारण किया है। कादूरिजीकी बहनकी लड़की पिंगलिके सालेकी पत्नी है। पर इस सम्बन्धकी अपेक्षा उनका साहित्यिक संगम प्रगाढ़ है।

ऊँचा कद आजानु बाहु गौर शरीर, गम्भीर चेहरा नोकदार नाक घनी सफेद मूँछ मोटे कमानी चश्मा घनी भौंहें छोटे-छोटे केशोंसे युक्त गन्जा सिर, हाथमें ताड़की बनी छड़ी पाँवोंमें पण्डिताऊ चप्पल खादीका धुली कन्धेपर काश्मीरी शाल या धारीदार खादीका उत्तरीय मुँहमें सिगरेट तमाखूका लम्बा-पतला धुआँ— संक्षेपमें यह कादूरिजीके बाह्य स्वरूप एवं उनकी वेशभूषाका वर्णन है।

—(के रामाय्यमूर्ति)

२ वीं शतीके प्रारम्भमें मछलीपट्टणम् आन्ध्रकी साहित्यिक एवं राजनैतिक चेतनाका केन्द्र बना हुआ था। स्व. पट्टाभि सीतारामय्या, मुट्नूरि कृष्णाराव, वेंकट शास्त्री जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति उसी नगरमें रहा करते थे। यहींपर कादूरिजीके जीवनका अत्यधिक भाग बीता। आपका जन्म चूँकि एक धनी परिवारमें हुआ था अतः आपके सामने आर्थिक समस्या कभी नहीं रही। असहयोग-आन्दोलनमें भाग लेनेके कारण आपने पढ़ाई छोड़ दी। सन् १९१ के सत्याग्रहमें जेलकी हवा भी खा आए। आपकी रचनाओंपर गांधीवादका प्रभाव है। राजनीतिके बाद साहित्य जगत ही उनका सर्वस्व बन गया। 'कृष्णा' पत्रिकाका सम्पादन करते समय आन्ध्र प्रदेशके कई नगरोंमें साहित्यिक भाषण देकर आपने अपनी विद्वत्ता एवं प्रभावशाली भाषासे लोगोंको मुग्ध कर लिया था। १९४१ में नव्य साहित्य परिषदके तेनाली अधिवेशनमें सभापतिके पदसे कादूरिजीने जो भाषण दिया उसका साहित्यमें एक विशिष्ट स्थान है।

रचनाओंके परिमाणकी दृष्टिसे कादूरिजीकी कविताओंकी संख्या अधिक नहीं है। पर आपने जो कुछ भी लिखा उसने साहित्यमें अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। कादूरिजीकी अपनी निजी कृतियाँ पौलस्त्य हृदयमु, पुजिमन्टल (मन्दिरकी घण्टियाँ) 'मावाळ्ळु, माऊरु' (मेरे लोग मेरा गाँव) हैं। इसके अतिरिक्त समय-समयपर पत्रिकाओंमें प्रकाशित कविताएँ हैं। पिंगळि-कादूरि कवियुगके नामपर १९२१ में तोलकरि (प्रथम वर्षाके दिन) नामक कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ। आन्ध्र साहित्यमें इस कवियुगको अमरकीर्ति देनेवाला काव्य सौन्दरनन्दमु है जिसका प्रकाशन सन् १९१४ में हुआ था। यह काव्य श्री वेंकटशास्त्रीकी षष्ठि-पूर्तिके समारोहके समय गुरु-दक्षिणाके रूपमें उनके चरणकमलोंमें समर्पित किया गया था। मछलीपट्टणम्के नागरिकोंके जीवनमें तिरुपति-वेंकट कवियोंके प्रति श्रद्धा-भक्तिसे

प्रेरित लोगों द्वारा सम्पन्न यह समारोह आन्ध्र साहित्यके इतिहासमें ही एक रमणीय एवं अविस्मरणीय घटना है। इस समारोहमें कई कविशिष्योंने काव्यके उपहारोंके रूपमें अपनी गुरु-दक्षिणा चुकाकर अपनेको धन्य माना। इस प्रकार समर्पित सौन्दरनन्दम् तेलुगु-शारदाकी सेवामें प्रस्तुत अपूर्व कुसुम है —

पुडमिरेडुलु तमसङ्गुम मोसंग
नविनु कान्क गैकुवाडु
मत्यपुत्तंबैन मधुधारनिडुनु
जमवकारमर्मेन प्रतिभवाडु
बीमुरोमिकि वेने तोमलु नविनु
बाडमापुरिकि बेड बहिनवाडु
चिननाडे बलचि वरिंचन कविताकन्य
नेड परिनम बोसि येलुवाडु
पूर्णकामुं त्यागियु भोगियैन
गुरुनि कनमोगुपोंटेमी चिन्न कन्य
मर्हत गोड्डुकोनुगाक यागप्रवापि
कवकनुल आन्ध्रोनु प्रसादकनकस्थापित।

[कानोंमें नव रसार्थोंके सादर समर्पित भेंटका स्वीकार करनेवाले
अवधान नामक आशुकविता-नाटका जन प्रचलित करनेवाले
कानोंमें मधु बरसानेवाले वाङ्माधुर्यके लिए प्रसिद्ध
बचपनमें ही वरण कर आनेवाली कविता-कन्यापर एक-पत्नी सम शासन करनेवाले
पूर्ण काम त्यागी और भोगी जो हमारे गुरु हैं,
उनके ऋणसे उऋण होनेके लिए यह छोटा-सा काव्य आन्ध्र-सरस्वतीके नयन-कोरोंका प्रसाद प्राप्तकर मोधन बने।]

पौलस्त्य हृदय गुडिगण्टलु मेरे लोग मेरा गाँव इन तीन कविताओंको एक संग्रहके रूपमें प्रकाशित किया गया है। इस काव्य-संग्रहको कवि अपने बड़े भाई स्वर्गवासी रामकृष्णस्वामीकी दिव्य स्मृतिमें समर्पित किया है। घर-गृहस्थी बाल-बच्चे सर्दी-गर्मी किसीपर ध्यान दिए बिना घुमक्कड़ बन घूमते रहनेवाले इस छोटे भाईका बड़े भाईने बिना किसी शिकायतके लालन-पालन किया था।

मनु शीर्षक प्रथम कवितामें कवि बड़ी विनम्रताके साथ अपना परिचय दिया है। इन पंक्तियोंको पढ़नेसे कविकी नम्रताका ही नहीं अपितु सहृदयता एवं ईमानदारीका भी पता चलता है।

मेरे लोग मेरा गाँव शीर्षक कवितामें किन्तु जनसे मुक्त होनेके लिए, काटूरिजीने अपने वंशका और अपने ग्रामका हृदयंगम वर्णन किया है। उन्होंने कहा है —

अप्रयत्नम्मुगा गाकु नब्बिनट्टि
कवनलेशम्मु मठ्ठकवनमुन मु
सार्थमगु गंधु महान स्तुत्यु वि
नुममारम्मवंधु भूहितविधौर्ति।

[सहज ही में प्राप्त थोड़ी-सी कविता करनेकी सामर्थ्यको अपने वंशपावनसे कृतार्थ बनाना चाहा। यह भी सोचा कि इससे किन्तु जन्मसे उऋण हो सकूँगा।]

इस प्रकार इस कविताके अन्तर्गत कविने अपने परिवार और अपने बन्धु बान्धवोंका काव्यमय परिचय दिया है। काटूरु ग्राममें आनेसे पहले इनके घरका नाम* ककपटपु था। काटूरुमें आकर नूजिवीडके राजाके आदेशानुसार उस गाँवमें पटवारीके पदका निर्वाह करते रहे तबसे काटूरि कहलाए। इस कवितामें गाँवके परिवारवालोंकी आपसी मित्रता सौजन्यता और सौहार्दका सुन्दर वर्णन किया है। यह वर्णन न केवल उनके परिवार तक सीमित है, अपितु पाश्चात्य प्रभावके सम्पर्कमें न आनेवाले प्रत्येक भारतीय आदर्श परिवारके लिए लागू होता है।

प्रस्तुत कवितामें घोरा अवमान मानते हुए भी हृदयमें उमड़नेवाली वेदनाके मारे गाँवकी प्राचीन दशा सम्प्रदाय प्रथाएँ और वर्तमान परिस्थितियोंका प्रभावशाली चित्रण किया है। इस कवितामें प्राचीन गाँवोंकी सम्पन्नता सम्मिलित प्रयास परस्परके सौमनस्यके साथ वर्तमान अवनति स्वार्थपरायणताका हृदयद्रावक वर्णन किया गया है। कविके पूर्वज आन्ध्र साहित्यमें 'प्रबन्धपरमेश्वर' और 'शम्भुदास' के नामसे प्रसिद्ध एर्रन के वंशज थे। ये लोग पहले चरल्वाडा में रहते थे वहाँ से ककपटमु और फिर काटूरु पहुँच गए। यह गाँव पहले बहुत गरीब दशामें था। लेकिन अंग्रेज शासकोंके कृष्णा नदीपर (विजयवाड़ाके पास) बाँधका निर्माण करते ही उस प्रान्तकी कायापलट हो गई। भूमि उपजाऊ बनी और सोना उगलने लगी। कृष्णाकी नहरोंसे पानी काटूरु तक पहुँचा। इस तरहसे मानों किसानोंका पुण्य प्रवाह ही नहरोंसे होकर बहने लगा हो। फलतः काटूरु अब लक्ष्मीका निवास बन गया। इस गाँवके सभी प्रेमसे मिलजुलकर रहते और गाँवकी उन्नतिमें बिना किसी भेदभावके हाथ बँटाते। कविने प्रातःकालमें नींदसे जागनेवाले गाँवका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। चारों वर्णोंके लोग आपसमें एक परिवारके लोगों-जैसा बर्ताव करते। सचमुच यह देखकर आश्चर्य होता है कि उस समयकी और आजकी परिस्थितियोंमें कितना अन्तर आ गया है।

---

*आन्ध्रमें प्रत्येक परिवारका अपना एक वंश नाम होता है जिसे 'घरका नाम' (Surname) कहते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके नामके पहले वंशका नाम जोड़नेकी प्रथा है।

पल्ले बहुकुल मामुपैमेतल विरिमि
पंचकोलककराय मुष्पतितमेत ?

[ग्रामीण जीवनका वह सारा आदर्श विगत भया और ह्रास! यह पञ्चमल-कपाय कहाँसे टपक पड़ा ?]

उस समयके लोग पाप कर्म न करते रहे हों ऐसी बात नहीं है पर उस पापको तरह-तरहके सिद्धान्तोंकी आड़में छिपाना या उसीको पुण्य कर्म सिद्ध करना उन्हें न आता था। भारतीय ग्रामीण जीवनके आदर्श ही क्रमशः अवनत होते गए—इसे देखकर कविका हृदय व्यथित हो उठा और उन सुखमय दिनोंका स्मरण कर कविका कोमल हृदय द्रवित हो उठा।

इस प्रकार कवितामें पारिवारिक जीवनकी गरिमा भारतीय जीवनके आदर्श और विशेष रूपसे आन्ध्रके ग्रामीण और पारिवारिक जीवनका प्रभावशाली वर्णन किया गया है।

इस तथ्यमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि श्रीरामचन्द्र आन्ध्र जातिके प्रियतम भगवान हैं और उनकी गाथा परम्परा रही है। क्या साहित्यमें क्या दैनिक जीवनमें—जहाँ सुनिए वहीं वह पवित्र नाम प्रतिध्वनित हुआ सुनाई पड़ेगा। रामचन्द्रजीने वनवासके चौदह वर्षोंकी अवधिका अधिकांश भाग आन्ध्र प्रदेशमें दण्डकारण्य और गोदावरीके किनारोंपर ही बिताया था। उस पावन-स्मृतिको जागृत करनेवाले अनेक स्थान और चिह्न आज रूपमें यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। मर्यादा-पुरुषोत्तमकी पुनीत गाथा रामायण महाग्रन्थोंसे आन्ध्र-साहित्य भरा पड़ा है। शास्त्रीजीने भी रामकी गाथाको एक नए रूपमें गाया है।

पाश्चात्य प्रभावके कारण हमारे देशके कई मनीषियोंने पौराणिक गाथाओं-को नए रूपमें देखने और चित्रित करनेका प्रयास किया है। इनमें बंगालके माइकेल मधुसूदन दत्तका नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। पर इन लेखकोंने भारतीय संस्कृतिकी विचार-धाराके विरुद्ध कुछ कल्पनाएँ की हैं कुछ साम्य रखे हैं पर शास्त्रीजीके रावणका चरित्र भारतीय विचारधाराके अनुकूल ही है। रावणके पिता पुलस्त्य परम निष्ठावान और ज्ञानी थे। वे तो साक्षात् ब्रह्मा थे। ऐसे पुलस्त्यका पुत्र है रावण। उसका हृदय अपने पिताके आत्मज्ञानसे प्रदीप्त था। कवि 'पौलस्त्य हृदय' नाम रखकर ही शास्त्रीने इस पहलूपर पाठकोंकी दृष्टि आकर्षित की है।

रावण विष्णु भगवानके उन परमभक्तोंमेंसे था जो वैरभावसे तीन जन्मोंमें ही भगवानके सान्निध्यकी प्राप्तिका उत्कट अभिलाषी था। पुराणोंके अनुसार रावणके जन्मका वृत्तान्त इस प्रकार है। सनत्कुमार आदि महर्षि एक बार भगवानके दर्शन करने वैकुण्ठ पहुँचे तो जय-विजय नामके द्वारपालोंने उन्हें अन्दर जानेसे रोका। ऋषियोंने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि तुम दोनों पृथ्वीपर जन्म लो। जय-विजय दोनों गिड़गिड़ाने लगे इतनेमें भगवान भी आए। तब ऋषियोंने शाप विमोचनका

मेरे लोग मेरा गाँव शीर्षक कवितामें पिंगु कवलसे मुक्त छन्दक लिए, कादूरिजीन अपने वंशका और अपने ग्रामका हृदयंगम वर्णन किया है। उन्होंने कहा है —

अप्रयत्नम्मुगा नाकु लभिंचनट्टि
कवनलेसम्मु मांगकवनमुन गु
तार्थमबु मंचु नदान वलगुबो पि
नृपमारम्मदंबु मूहिंचिकोंटि।

[सहज ही में प्राप्त थोड़ी-सी कविता करनेकी सामर्थ्यको अपने वंशकवनसे कृतार्थ बनाना चाहा। यह भी सोचा कि इससे पिंगु कवनसे उऋण हो सकूँगा।]

इस प्रकार इस कविताके अन्तर्गत कवि अपने परिवार और अपने बन्धु बान्धवोंका काव्यमय परिचय दिया है। कादूर ग्राममें आनेसे पहले इनके घरका नाम* नस्पटपु था। कादूरमें आकर नृसिंहीडूके राजाके आदेशानुसार उस गाँवमें पत्वारीके पदका निर्वाह करते रहे, तबसे कादूरि कहलाए। इस कवितामें गाँवके परिवारवालोंकी आपसी मित्रता सौजन्यता और सौहार्दका सुन्दर वर्णन किया है। यह वर्णन न केवल उनके परिवार तक सीमित है, अपितु पाश्चात्य प्रभावके सम्पर्कमें न आनेवाले प्रत्येक भारतीय आदर्श परिवारके लिए लागू होता है।

प्रस्तुत कवितामें प्रायः चंक्रमण मानते हुए भी हृदयमें उमड़नेवाली वेदनाके मारे गाँवकी प्राचीन प्रथा सम्प्रदाय प्रथाएँ और वर्तमान परिस्थितियोंका प्रभावशाली चित्रण किया है। इस कवितामें प्राचीन गाँवोंकी सम्पन्नता सम्मिलित प्रयास परस्परके सौमनस्यके साथ वर्तमान अवनति स्वार्थपरायणताका हृदयग्राहक वर्णन किया गया है। कविके पूर्वज आन्ध्र साहित्यमें 'प्रबन्धपरमेश्वर' और 'शम्भुदास' के नामसे प्रसिद्ध एर्रन के वंशज थे। ये लोग पहले चरस्वाडा में रहते थे वहाँ से नरूपटनु और फिर कादूर पहुँच गए। यह गाँव पहले बहुत गरीब दशामें था। लेकिन अँग्रेज शासकोंके कृष्णा नदीपर (विजयवाडाके पास) बाँधका निर्माण करते ही उस प्रान्तकी कायापलट हो गई। भूमि उपजाऊ बनी और सोना उगलने लगी। कृष्णाकी नहरोंसे पानी कादूर तक पहुँचा। इस तरहसे मानों किसानोंका पुण्य प्रवाह ही नहरोंसे होकर बहने लगा हो। फलतः कादूर अब लक्ष्मीका निवास बन गया। इस गाँवके सभी कुलवाले मिलजुलकर रहते और गाँवकी उन्नतिमें बिना किसी भेदभावके हाथ बँटाते। कविने प्रातःकालमें गीदसे जागनेवाले गाँवका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। चारों वर्णोंके लोग आपसमें एक परिवारके लोगों-जैसा बर्ताव करते। सचमुच यह देखकर आश्चर्य होता है कि उस समयकी और आजकी परिस्थितियोंमें कितना अन्तर आ गया है।

*आन्ध्रमें प्रत्येक परिवारका अपना एक वंश नाम होता है जिसे 'घरका नाम' (Surname) कहते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके नामके पहले वंशका नाम जोड़नेकी प्रथा है।

पस्से सनुकूल माधुर्यमेस्त विरिगि
पचकोलव्याय मुप्पतिल्लेल ?

[ग्रामीण जीवनका वह सारा माधुर्य बिगड़ गया और हाय! यह पञ्चमल-कपाम कहाँ छिप पड़ा ?]

इस समयके लोग पाप कर्म न करते रहे हों ऐसी बात नहीं है, पर उस पापको तरह-तरहके सिद्धान्तोंकी आड़में छिपाना या उन्हींको पुण्य कर्म सिद्ध करना उन्हें न आता था। भारतीय ग्रामीण जीवनके आदर्श ही क्रमशः अवनत होते गए—इसे देखकर कविका हृदय व्यथित हो उठा और उन सुखमय दिनोंका स्मरण कर कविका कोमल हृदय द्रवित हो उठा।

इस प्रकार कवितामें पारिवारिक जीवनकी गरिमा भारतीय जीवनके आदर्श और विशेष रूपसे आन्ध्रके ग्रामीण और पारिवारिक जीवनका प्रभावशाली वर्णन किया गया है।

इस तथ्यमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि श्रीरामचन्द्र आन्ध्र जातिके प्रियतम भगवान हैं और उनकी गाथा परमप्रिय रही है। क्या साहित्यमें क्या दैनिक जीवनमें—जहाँ सुनिए, वहीं वह पवित्र नाम प्रतिध्वनित होता सुनाई पड़ेगा। रामचन्द्रजीने वनवासके चौदह वर्षोंका अधिकांश भाग आन्ध्र प्रदेशमें दण्डकारण्य और गोदावरीके किनारोंपर ही बिताया था। उस पावन-स्मृतिकी याद दिलानेवाले अनेक स्थान और चिह्न आन्ध्र देशमें जगह-जगह दृष्टिगोचर होते हैं। अगणित-पुराणोंकी पुनीत गाथा गानेवाले महानुभावोंसे आन्ध्र-साहित्य भरा पड़ा है। शार्दूलजीने भी रामकी गाथाको एक नए रूपमें गाया है।

पाश्चात्य प्रभावके कारण हमारे देशके कई कवियोंने पौराणिक गाथाओं-को नए रूपमें रचने और चित्रित करनेका प्रयास किया है। इनमें बंगालके माइकल मधुसूदन दत्तका नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। पर इन लेखकोंने भारतीय संस्कृतिकी विचार-धाराके विरुद्ध कुछ कल्पनाएँ की हैं, कुछ काव्य रचे हैं, पर शार्दूलजीके रावणका चरित्र भारतीय विचारधाराके अनुकूल ही है। रावणके पिता पुलस्त्य परम निष्ठावान और ज्ञानी थे। वे तो साक्षात् ब्रह्मा थे। ऐसे पुलस्त्यका पुत्र है रावण। उसका हृदय अपने पिताके आत्मज्ञानसे प्रदीप्त था। कविने 'पौलस्त्य हृदयं' नाम रखकर ही काव्यके इस पहलूपर पाठकोंकी दृष्टि आकर्षित की है।

रावण विष्णु भगवानके उन परमभक्तोंमेंसे था जो वैरभावसे तीन जन्मोंमें ही भगवानका सान्निध्य प्राप्त करनेका उत्कट अभिलाषी था। पुराणोंके अनुसार रावणके जन्मका वृत्तान्त इस प्रकार है। सनकसनन्दन आदि ऋषि एक बार भगवानके दर्शन करने वैकुण्ठ पहुँचे तो जय-विजय नामक द्वारपालोंने उन्हें अन्दर जानेसे रोका। ऋषियोंने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि तुम दोनों पृथ्वीपर जन्म लो। जय-विजय दोनों गिड़गिड़ाने लगे। इतनेमें भगवान भी आए। तब ऋषियोंने शाप विमोचनका